वीर माताएँ

(क्रान्तिवीरों की माताओं के उद्गार)

संगीता पवार

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली - 110055

माता-पिता के विषय में लेखिका का भाववर्णन -

दैवते मायतात

मायतात या अपूर्व व्यक्ति
अमर्याद हो त्यांची शक्ति
सातत्याने प्रयत्न करिती
मुले असावी सदा सुखी ॥ 1 ॥

आमचे हासू त्यांचे हासू
अमुचे आसू त्यांचे आसू
स्वप्ने अमुची त्यांची बनती
अमुच्यासाठी सदा कष्टती ॥ 2 ॥

पाठीवरती हात तयांचा
मिळे दिलासा वात्सल्याचा
मायाभरला स्पर्श तयांचा
जणू उतारा दुःखांचा ॥ 3 ॥

कितिही आम्ही मोठे झालो
जीवनात कोठेही गेलो
अमुचे यश अन् अमुची कीर्ति-
थिटीच त्यांचया माये पुढती ॥ 4 ॥

(अंग्रेजी से मराठी भावानुवाद श्रीमती हेमा क्षीरसागर)

प्रकाशकीय

इक्कीसवीं सदी भारत की युवा पीढ़ी को आवाहन् देनेवाली तथा अवाहन् करने वाली शताब्दी है। भारतवर्ष पुनः एक बार दुनिया के सामने आदर्शरूप बनकर आए, पर यह भारतीयों का स्पप्न युवा पीढ़ी ही साकार कर सकती है। परन्तु इस महान कार्य के लिए प्रेरणा स्रोत कौन-से? इतिहास के स्वर्णपृष्ठों को खोलिए, हर पृष्ठ पर अनेक स्रोत मिलेंगे। उन्हीं में से एक - "राष्ट्राय स्वाहा" का मंत्रघोष करते हुए स्वातंत्र्यज्ञ में अपने जीवन की आहुति देनेवाले क्रान्तिवीरों की कथाएँ। उनकी वीरगाथा युवा पीढ़ी के सामने रखने की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को पूरा करने की दिशा में श्रीमती संगीता पवार ने इस पुस्तक के माध्यम से उठाया हुआ एक पुरोगामी कदम है। रूपकों के द्वारा पाठकों के सामने प्रस्तुत है - क्रान्तिकारियों की माताओं की भावनाओं का प्रभावी रूप ।

अपने भारतीय समाज की हर श्रेणी से इस प्रयत्न का स्वागत होगा, इस आशा और इस विश्वास के साथ सभी पाठकों के हाथ सादर सप्रेम प्रस्तुत.......

मनोगत

नक्षत्रों के ऋणानुबंध ....

मैं जब तेरह वर्ष की थी तब मेरे पिताजी मेरे लिए रणजीतदेसाई लिखित श्रीमान योगी नामक पुस्तक कॉलेज के ग्रंथालय से ले आये थे। वह पुस्तक मैंने दो दिन में ही पढ़कर पूरी कर दी। और तब से ही ऐतिहासिक पुस्तकें पढ़ने की मुझमें रुचि निर्माण हुई। मैं ऐतिहासिक पुस्तकों की माँग करती और पिताजी मेरी माँग पूरी करते रहते। यह सिलसिला चालू हो गया। मेरे पिता जीवशास्त्र के प्राध्यापक थे। उन्होंने और मेरी माँ ने पढ़ाई या अन्य काम के लिए मुझपर कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की। इसके विपरीत उन्होंने मेरी इस अभिरुचि को बहुत सराहा और हर तरह से सहयोग देकर बहुत प्रोत्साहन दिया। श्री ज्ञानेश्वरी और श्री दासबोध भी मैंने इसी उम्र में पढ़ा। मेरे विवाह के बाद मेरे इस कार्य में कुछ सालों तक कुछ बाधाएँ आयीं।

मेरा बेटा प्रथमेश जब ग्यारह वर्ष का था, तब उसे "जाणता राजा" में सहभागी होने का सौभाग्य मिला था। उसी बहाने पू. बाबासाहेब पुरंदरे से बातचीत का मौका मिला और उनके सुझावों के अनुसार मैंने कथाकथन की शुरुआत की। यह शुरुआत मेरे एक पुराने विद्यार्थी और मेरे मानसपुत्र श्री. मिलिंद उपासनी ने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद में बुलाकर करायी। उसके बाद साड़ी के बदले उपहार में मैं पुस्तक माँगने लगी। और मेरे पति श्री. अनिल पवार ने हर तीज-त्यौहार पर मेरी वह माँग पूरी की।

मैं अपनी ही पाठशाला में नौकरी करने लगी। फिर छोटे-छोटे रूपक, नाटक पवाड़े लिखने का और प्रस्तुत करने का सिलसिला शुरू हुआ। इसके कारण विद्यार्थियों के सामने मैं कुछ अच्छे आदर्श प्रस्तुत कर

सकी। इस प्रवास के दरमियान सांसारिक जीवन में भी कई बाधाएँ आयीं। कभी-कभी तो इस तरह अंधकार छा जाता कि कई बार मैं निराशा की खाई में डूब जाती। अच्छी-अच्छी बातों के लिए विरोध सहन करना पड़ता। पर उस अंधकार में राह टटोलते समय दो पनतियाँ हमेशा मुझे मार्ग दिखाती रहती थीं। एक तो मेरे माता-पिता और दूसरे नाना और मेरी नानी माँ। उनके ऋण तो अनेक-अनेक जन्मों के बावजूद भी मैं चुका नहीं पाऊँगी। उनके ऋण से भरी मेरी झोली तो कभी हल्की हो भी नहीं सकेगी।

यह छोटी-सी पुस्तक मेरे लिए तो संकल्पसिद्धि या मंगलकार्य ही है, अतः इस शुभ कार्य का प्रारंभ पाँच ज्योतियाँ जलाकर ही होना चाहिए।

पहली ज्योति हर मंगलकार्य के प्रारंभकर्ता श्रीगणेशजी के और विद्या के रथ पर आरूढ़ श्री शारदा के चरणा के पास,

दूसरी ज्योति मेरे सद्‌गुरु श्री गजानन महाराज और श्री श्री रविशंकरजी के चरण-कमलों के पास,

तीसरी ज्योति गिरिकंदराओं को आवाज देकर हर एक के मन में देशभक्ति की ज्योति जगाने वाली जीजामाता और श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के चरणों के पास,

चौथी ज्योति अपना खून सींच कर स्वातंत्र्यदेवता को भारतभूमि के सिंहासन पर विराजमान करनेवाले ज्ञात-अज्ञात सभी स्वातंत्र्य-क्रान्तिकारियों के चरणों पर,

पाँचवी ज्योति हमारी पाठशाला के हीरक महोत्सव में मेरा पहला रूपक - भारतमाता उवाच जिन्होंने प्रस्तुत कराया, और जो हमेशा मुझे हिम्मत देते रहे और मार्गदर्शन करते रहे पर आज हमारी आँखों में अश्रु शेष रखकर अनंतमार्ग पर चल दिये उन मेरे आदरणीय गुरु स्वर्गीय वसंत धर्माधिकारी की स्मृति हेतु।

जमीन अच्छी हो, तो उपज में निखार होता है। मेरी शालेय

पार्श्वभूमि ऐसी ही जोरदार थी। विद्यार्थियों के साथ किये मेरे छोटे-मोटे प्रयोगों का मेरे सहकारी शिक्षक-शिक्षकाओं ने बहुत स्वागत किया। मेरे कथा-कथन को हर समय मनःपूर्वक दाद दी, उसकी बहुत सराहना की। उन सबके साथ विशेष उल्लेख करने की इच्छा हो रही है, वह है मेरी जी-जान से प्यारी सहेली श्रीमती प्रिया सफले। इन्होंने प्रारंभ से ही मेरे लेखन में मनःपूर्वक साथ दिया। मेरी सहेली श्रीमती अपर्णा दामले ने समय-समय पर मेरा योग्य मार्गदर्शन किया। मेरी दूसरी सहेली विभा (श्रीमती सीमा वैजापूरकर) ने हर समय मुझे प्रोत्साहन दिया और मेरी मदद की।

मेरी पाठशाला के भूतपूर्व मुख्याध्यापक श्री आर.ए. चौधरी सर का मुझे अनमोल सहकार्य मिला। उसी तरह हमेशा ही मेरी मदद के लिए तैयार रहने वाले हमारे आदरणीय और प्रिय श्री एस.डी. भिरूड़ सर और पाठशाला में कभी भी बुलाने पर हमेशा हँसते हुए आने वाला फोटोग्राफर श्री श्याम कासार का यहाँ विशेष उल्लेख करने की इच्छा है।

वैसे तो गुरू मार्गदर्शन करें और शिष्य उसका अनुसरण करे यही परिपाटी रही है, पर आज तो अपने छात्रों से भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है, इसका यथार्थ में अनुभव चि. मंगेश पाध्ये, कु. हर्षा महाबल और चि. श्रेयस दाणी इन सभी प्रिय छात्रों से चर्चा करते समय हुआ। मैं उनकी बहुत ऋणी हूँ।

9 अगस्त को हम अपनी पाठशाला में क्रान्तिदिन मनाते हैं। मैं अपने छात्रों के सामने क्रान्तिकारियों को हर वर्ष नये-नये ढंग से पेश करती आयी हूँ।

चार वर्ष पहले मेरा बेटा प्रथमेश पढ़ाई हेतु बाहर गाँव गया था और मेरे मन में जो उथल-पुथल हो रही थी उसी में से इस पुस्तक का स्पंदन प्रारंभ होने लगा। सिर्फ पढ़ाई के लिए मेरा बेटा बाहर गया तो मैं इतनी बेचैन, इतनी उद्विग्न हो गयी। जिन्होंने अपने कोमल सुपुत्रों और सुपुत्रियों को भारतमाता के आँचल में डाल दिया, उन माताओं के मन

में कैसे तूफान उठे होंगे? क्या स्थिति हुई होगी उनके मन की? बार-बार मेरे मन में आने लगा और अपनी सखियों के सामने मैंने अपना अंतर्मन खोला कि यदि मैं इन माताओं के भाव लिखूँ तो क्या हम रूपक के स्वरूप में प्रस्तुत कर सकेंगी? महत् आश्चर्य इस बात पर हुआ कि सभी सखियों ने उत्स्फूर्तरूप से हाँ भरी और उसी उत्साह के साथ 'यज्ञ', 'महानायक', 'क्रान्तिगाथा' आदि कितनी ही पुस्तकों का पठन-पाठन शुरू हुआ।

इन पुस्तकों में माँ-बेटों के जो वार्तालाप थे, वे इतने हृदयग्राही थे कि रूपकों में उनका उपयोग करने के लिए उनमें बहुत ही थोड़ा फेर-बदल करना पड़ा।

क्रान्तिदिन के अवसर पर स्कूल के व्यासपीठ पर प्रयोग पूरी तरह सफल हुआ। संस्था के अध्यक्ष माननीय श्री. नानासाहेब दाणी और सुनीता काकी ने मेरी पीठ थपथपा कर मेरी सराहना की और आज अपने बीच मोरदे काका नहीं हैं, पर उन्होंने जो सराहनाओं की वर्षा मुझ पर की थी, उसे मैं आजन्म भूल नहीं सकती।

मेरे इस कार्य में मुख्य सहभाग है, मेरी आठवीं कक्षा में पढ़नेवाली नन्ही-सी छात्रा सूत्रसंचालन करनेवाली प्रांजली का। कौन-सी भूमिका कौन करेगा, यह उसी ने तय किया और वह सौ प्रतिशत यशस्वी हुई। पहले भाग के रूपकों का प्रयोग यशस्वी करने में श्रीमती प्रतिभा देशकर, श्रीमती नेहा जोशी, श्रीमती ज्योति रनालकर, श्रीमती अलका पितृभक्त, श्रीमती मंजुला तिवारी, श्रीमती सुनीता पाटिल, श्रीमती प्रिया सफले और मेरे द्वारा निभायी हुई भूमिकाएँ महत्त्वपूर्ण थीं।

कुछ क्रान्तिकारियों की माताओं की भावनाओं को अधिक नैसर्गिक भाव देने के लिए पंजाबी, बांग्ला, तेलुगु, गुजराती आदि भाषाओं का प्रयोग करना पड़ा, जिसके लिए श्रीमती उमा सेठी, श्री नितिन जोशी, कु. वैशाली राठोड़ और श्रीमती बी. सरस्वती से बहुत मदद मिली।

आजतक के इस कार्य में कितने ही सहृदय हितचिंतकों से मदद मिली। पर पुस्तक प्रकाशन का आग्रह था मेरे माता-पिता का और दीदी

की पुस्तक क्यों नहीं प्रकाशित करते पूछने वाला मेरा मानसबंधु रोहित दलवी का। पुस्तक छापने के लिए मेरी बहन श्रीमती सुचिता, उसके पति श्री. किरण, मेरा भाई अभिजीत और भाभी श्रीमती सोनल, भांजियाँ कु. शमिका, कु. ऐश्वर्या और चिन्मयी इन सब का सुमधुर आग्रह मेरे साथ रहा।

अपना खुद का महत्त्वपूर्ण काम छोड़कर मेरी हस्तलिखित पाण्डुलिपि और संगणक पर टंकबद्ध करने वाले श्री संदीप सरोदे और लिखित साहित्य को लाने-ले जाने का महत्त्वपूर्ण काम किया श्री शांताराम सोनार काका ने। डॉ. श्रीमती प्रतिभा जगताप ने जलगाँव आकाशवाणी पर मातृवंदना के नाम यह कार्यक्रम प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया। हमारी पाठशाला के ग्रंथपाल श्री ऋषिकेश जोशी और संगणक-प्रमुख स्वाती झांबरे ने हर समय मदद की।

मेरे पिताजी के मित्र डॉ. क.कृ. क्षीरसागर काका की मदद एक अप्रतिम आनंद का संयोग है। उनकी सुविद्य पत्नी डॉ. हेमा क्षीरसागर ने मुद्रितशोधन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्हें अनेकानेक साधुवाद। मेरे माता-पितातुल्य पुष्पा काकी और प्रभाकर काका को पुनश्च सादर प्रणाम।

मेरे सांस्कृतिक जीवन की शुरुआत करनेवाले पुणे के डॉ. श्री एम.जी. जोशी सर और डॉ. श्रीमती सुलेखा जोशी मैडम की भी मैं ऋणी हूँ और आजीवन ऋणी ही रहूँगी।

ज्येष्ठ इतिहासतज्ञ श्री निनाद बेडेकर जी ने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर मुझे पुरस्कृत किया। यह मेरे लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आजीवन मैं उनकी ऋणी रहूँगी।

अंतत: भारतीय इतिहास संकलन समिति, पुणे, भारतीय विचार साधना ने इस प्रकाशन में जो योगदान किया, वह विशेष उल्लेखनीय है। और अब सुरुचि प्रकाशन दिल्ली द्वारा हिन्दी में प्रकाशन के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

श्रीमती संगीता अनिल पवार

प्रस्तावना

अपने पाल्य में वीरश्री का निर्माण करना पालक का ही कर्तव्य होता है। जिनमें वीरश्री होती है, वे ही पराक्रमी इतिहास बनाते हैं। विशेषतया वीर–माता ने दिये हुए संस्कार ही कारणीभूत होते हैं। रामायण–महाभारत की कथाएँ शिवाजी को सुनाकर ही माताश्री जीजाबाई ने स्वराज्य का स्वप्न साकार कराया। शिवप्रभू ने वीररस के स्फूर्तिदायक इतिहास का निर्माण किया। मातुः श्री जीजाबाई का आशीर्वाद शिवप्रभू के राज्यभिषेक तक अपने वीरपुत्र के सिर पर बना रहा।

श्रीमती संगीता अनिल पवार ने यहाँ पंद्रह वीरमाताओं की कथाओं का शब्दबद्ध किया है। इनमें से आठ कथाओं को उन्होंने रंगमंच पर भी प्रस्तुत किया है। बालकों को, विशेषतया तरुण पीढ़ी को प्रेरणा देने के लिए वीरमाताओं के शब्द बहुत ही उपयुक्त हैं। सीधी, सरल भाषा में लिखा हुआ यह कथा–कथन बहुत प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

आज दूरदर्शन बालकों पर हावी है, पर राष्ट्रप्रेम जागृत करनेवाला शायद ही कोई कार्यक्रम उस पर प्रस्तुत होता है।

श्रीमती संगीता पवार ने इतिहास से प्रेरणा लेकर किया हुआ कथा–कथन विद्वेषविरहित, राष्ट्रप्रेमी समाज निर्माण होने पर ही कृतकृत्य होगा। वैसी राष्ट्रप्रेमी पीढ़ी निर्माण हो, अपना भारतवर्ष नंदनवन की तरह पुनः फले फूले इसलिए श्रीआदिशक्ति तुळजाभवानी की आराधना।

निनाद बेडेकर

अनुक्रमणिका

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं। पर मित्रों, जिन माताओं ने अपने बच्चों को अपनी मातृभमि को स्वतंत्र कराने के लिए मातृभूमि पर न्यौछावर कर दिये, और वे बच्चे भी अपनी माताओं के सामने ही फाँसी पर खुशी-खुशी झूल गये उन माताओं को क्या कुछ झेलना पड़ा होगा, क्या कुछ वेदनाएँ हुई होंगी। उन वेदनाओं, उन भावनाओं को लेखिका ने अपनी कलम से कागज पर उकेरा है।

कोटिशः धन्यवाद

चाफेकर बंधुओं की माँ - द्वारिकाबाई

द्वारिकाबाई और हरिपंत चाफेकर के तीन पुत्र - दमोदर, बालकृष्ण और वासुदेव सूर्य के समान तेजस्वी तीन-तीन पुत्र होने के बावजूद जिस माँ को मुखाग्नि देने के लिए पुत्र न हो उस माँ - द्वारिकाबाई की व्यथा आप तक पहुँचाने क. प्रयत्न है।

सर्व मंगलमांगल्ये .... शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरी .... नारायणि नमोस्तुते ।।

मुझे अब भी याद आते हैं वे क्षण, जिस एक शाम को मैं स्तोत्र बोल रही थी और स्वामी विवेकानंदजी की शिष्या भगिनी निवेदिता मुझ से मिलने आयी थी। वे सोच रही थीं - मेरे तीनों बेटे देश के लिए फाँसी पर चढ़ गये, घर में विधवा बहुएँ, नाते-पोते ... कैसी मनःस्थिति होगी मेरी?

हम चाफेकर, मूलतः कोकण के, पर हमारे एक पूर्वज मोरया गोसावी संस्थान में आये और तब से हम पुणे के पास चिंचवड़ में रहने लगे और हम चिंचवड़वाले ही हो गये।

इनका नाम था हरिपंत। वे प्रख्यात कीर्तनकार थे। मेरा बड़ा बेटा दामोदर उनको हार्मोनियम पर साथ देता। कभी-कभी अभंग भी गाता था। उससे छोटा बालकृष्ण, उसे हम बापूराव कहते थे। वह स्वरमंडल बजाता और उससे छोटा वासुदेव भी कीर्तन में साथ देता। पर फिर भी तीनों के लक्षण शुरू से ही अलग थे। हजार-हजार दण्ड-बैठक, तो हजार बारह सौ सूर्य नमस्कार लगाना, तो कुएँ में घंटों तैरना, दिनभर कुछ न कुछ चलता ही रहता। पर कभी-कभी वे घर पर देर से आते, तो उनके पिताजी बहुत नाराज होते थे। यदि रात को देर से आते, तो ससुर को पता न चले इसलिए बड़ी बहू दुर्गा धीरे-से दरवाज़ा खोलकर तीनों को अन्दर ले आती थी।

इनके कीर्तन में हरबा पंडित पखावज पर साथ देते थे। एक दिन दामोदर, बापूराव और हरबा पंडित ख़ड़की पुल पर घूमने गये थे। वहाँ शराब के नशे में धुत कुछ अंग्रेज सोल्जरों ने (सिपाहियों ने) हरबा की पगड़ी का मजाक उड़ाया। बस, दामोदर को हाथ साफ करने का मौका मिल गया। नशे में धुत सिपाहियों को पटकना शुरू कर दिया। आखिर में उन सिपाहियों को वैसे ही छोड़कर हरबा को लेकर घर आ गये।

एक दिन बापूराव ने कहा - माँ, आज मुंबई के प्रो. वेलिणकर के सिर पर लोहे का सरिया ऐसा दे मारा कि ... बस। मैंने पूछा - क्यों रे, उसने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा? दामोदर ने जवाब दिया - वह स्वधर्म छोड़कर ब्रिटिशों के धर्म में गया। ये अंग्रेज लोग आस्तीन के साँप, कब पलटकर काट खाएँगे कह नहीं सकते।

वासुदेव ने कहा - यह तो उसके लिए हल्का-सा प्रायश्चित स्वरूप है और हम निकल पड़े कोल्हापुर के लिए।

तीनों को अंग्रेजों के नाम से सख्त चिढ़ थी। मुंबई कोर्ट में इतनी

कड़ी सुरक्षा के बावजूद रानी के पुतले पर डामर पोतकर जूतों की माला पहनाने वाले सिर्फ मेरे दामोदर और बापूराव ही थे, यह सत्य सिर्फ उन दोनों को और मुझे ही मालूम था।

यहाँ पुणे में प्लेग की बीमारी फैल रही थी। अंग्रेजों के सिपाहियों को तो जैसे खुला आसमान ही मिल गया था। जूते पहनकर सीधे घर में घुसकर मंदिर तक चले आते। चीजों को इधर-उधर फैंकते, अच्छी-अच्छी चीजें ही उठा कर ले जाते।

इतना ही नहीं कपड़े उतरवाकर तलाशी लेते। यह सुनकर इन तीनों को तो बहुत ही गुस्सा आता था।

एक बार शिवाजी-जयंती के उत्सव में दामोदर और बापूराव सिरपर भगवा साफा बाँधकर डंडा हाथ में ले कर दो तरफ खड़े हो गये और डंडा पटक-पटक कर कहने लगे -

अरे मूर्खों, क्यों मर्द बने हो
इतनी बड़ी-बड़ी मूछों पर ताव दे रहे हो?
आती नहीं शरम तुम्हें इस दासता को भोगते हो,
जान जाने का कुछ और उपाय करो।

यह सुनकर मुझे बहुत आनंद होता था। मैं कहती - बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, करो करो ! जान जाने का उपाय करो। इन अंग्रेजों को अच्छा पाठ पढ़ाओ। इस पर ये मुझसे कहते - देखो द्वारिकाबाई, ऐसी शिक्षा तो इन बच्चों को बिगाड़ेगी।

बच्चों के मन में जलते इस यज्ञकुंड में घी डालने का काम किया अपने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जी ने - "तुम यदि इतने शूर वीर हो तो यह अंग्रेज रैण्ड जिन्दा कैसे रह गया?"

और एक दिन खबर आयी - अंग्रेज अधिकारी रैण्ड और आयर्स्ट, रानी का जन्मदिन मनाकर वापस आते समय मारे गये। "यह काम तो मेरे लाड़लों के सिवा और किसी का हो भी नहीं सकता।" -

मुझे पूरा-पूरा यकीन था। मेरे बेटों ने अपना शौर्य दिखा दिया। मेरा दूध काम आ गया।

रैण्ड की हत्या करनेवाले को पकड़वाने के लिए सरकार ने 20 हजार का इनाम रखा था और बस ... बस यहीं गड़बड़ हो गई। रैण्ड की हत्या की छानबीन करने वाले ब्रुईन ने द्रविड़ बंधुओं को साथ ले लिया।

पहले दामोदर पकड़ा गया, उसने हत्या करना कबूल किया। बाद में रानडे, साठे और बालकृष्ण। मेरा सबसे छोटा 19 साल का बेटा वासुदेव भी पकड़ा गया। पर पकड़े जाने से पहले बालकृष्ण और वासुदेव ने अपने आपको ब्रुईन का नौकर बताकर उस देशद्रोही को मार डाला था।

19 अप्रैल को दामोदर को फाँसी दी गयी और 9 मई को वासुदेव और 10 मई को रानडे और बालकृष्ण को फाँसी दी गयी। बालकृष्ण और वासुदेव को साथ - साथ फाँसी दी जावे, उनकी यह इच्छा भी अंग्रेजों ने पूरी नहीं की।

यह सब भगिनी निवेदिता को मैं बता रही थी और अंत में उनको एक पुराना वाकया सुनाया - अपने तीन पुत्रों का युद्ध में अंत होने पर एक वृद्धा ने छत्रपति शिवाजी महाराज से कहा था - राजा, मेरे चौथा बेटा होता तो उसे भी मैं आपके सुपुर्द कर देती।

मैं क्यों दुख करूँ? मेरे तो तीनों राजहंस मातृभूमि की गोद में चिरनिद्रा में सो रहे हैं। ऐसे देशभक्तों की माँ बनने का सौभाग्य भगवान ने मुझे दिया। मेरा जीवन सार्थक हो गया।

कार्य छोड़कर अधूरा, गिरा लड़ते हुए तो गम क्या
कार्य आगे बढाएँ तुम्हारी वीरता के पाठ पढ़कर हम।

यह लिखने वाले विनायक दामोदर सावरकर, मेरे पुत्रों को बचा हुआ काम आगे ले ही जाएँगे। निश्चित निश्चित .. आगे ले जाएँगे। और एक दिन भारतमाता गुलामी से मुक्त हो जाएगी। निश्चित निश्चित .....

2

स्वातंत्र्यवीर सावरकर की माता- मातृरूपी येशूभाभी

उसकी अपनी कोई संतान नहीं थी, पर "मातृभूमि के लिए मरण ही जन्म है ओर तेरे बिना जीना ही मरण है" ऐसी जीवन-मरण की व्याख्या करने वाले तेजस्वी देवर तात्याराव को ही पुत्रवत् मान लिया था, येशूभाभी ने। बाबाराव सावरकर से विवाह होकर भी उनको सुखी जीवन मिला ही नहीं। माँ ने भी जितनी यातनाएँ न भोगी हों, उससे भी ज्यादा सह कर, घरगृहस्थी के लिए त्याग करने वाली येशूभाभी ने माँ के त्याग का पाठ दुनिया के सामने रखा है।

शुभं करोति कल्याणम्, आरोग्यं धनसंपदा ।

सावरकर के घर से धन तो कभी लुप्त हो गया था। पर फिर भी, फिर भी हमारे घर में हमेशा प्रकाश रहा और वह प्रकाश था - देशभक्ति का ...

तात्या, मेरे देवर -विनायकजी ने एक बार अपनी पत्नी माई से कहा, "चार बर्तन और चूल्हा-चौका लेकर तो कोई भी घर-गृहस्थी कर लेगा, पर हमारी घर-गृहस्थी तो देशभक्ति की है और वह भी तुम्हे निभानी है।"

इन्हें सब बाबाराव के नाम से ही संबोधित करते थे। इनका असली नाम था - गणेश। इन्होंने और तात्या ने देशभक्ति के कार्य में ही अपने आपको पूर्णरूप से अर्पित कर दिया था।

मुझे कई बार याद आता है - मैंने देवरजी को - याने तात्याराव को पहली बार देखा था अपनी शादी में। वे आये-तो बड़े रौब के साथ पूछते हुए "हमारी भाभी कहाँ है?" मैंने चुपके से झाँक कर देखा तो इस तेजस्वी चमकीली आँखों वाले लड़के के साथ अच्छी खासी मित्रमंडली है। मेरे पिताश्री ने धीमी आवाज में पूछा - "ये सब अपनी ही बिरादरी के हैं?" झट् से जवाब मिला - नहीं, नहीं ये तो बीसियों जातियों और धर्म के हैं। जिद्द करके तात्या उनके ही साथ भोजन के लिए बैठ गये। ऊपर से जिद्द यह थी कि भाभी स्वयं लड्डू परोसे। देवर जी की जिद्द पूरी करते करते तो लड्डू का बर्तन ही मेरे हाथों से छूट गया। सब लड्डू इधर-उधर बिखर गये। देवर जी ने हँसते-हँसते कहा - भाभी ने तो लड्डू की बरसात कर दी। उनकी इच्छा है कि हम खूब लड्डू खाएँ।

देवरजी का मुझ पर विशेष प्रेम था। शादी के बाद मैं घर आयी, पर उससे बहुत पहले सासूजी का स्वर्गवास हो गया था। तात्या अपनी माँ के बाबत जब-जब बात करते, बहुत भावुक हो जाते। एक बार बता रहे थे - "भाभी, एक बार मैं नींद से हडबड़ाकर उठा तो पसीने से

तरवतर हो गया था। अपने पल्लू से मेरा पसीना पोंछते हुए माँ ने पूछा – क्या हो गया विनायक? क्यों इतने घबरा गये हो? – मैंने कहा "देवी मेरे सपने में आयी और बोली – तात्या मुझे तेरी बली चाहिये। माँ ने मेरे मुँह पर हाथ रखते हुए कहा – हे नारायणि, तुझे बली चाहिये तो मेरी बली ले ले। आँसू पोंछते हुए देवरजी बोले – "भाभी, देवी ने माँ की बली ले ली"

आगे वे कहने लगे – "भाभी, मैंने देवी से कहा – देवी, मेरी माँ मुझे लौटा दो और मेरी बली ले लो। भाभी, देवी ने आपके रूप में माँ मुझे लौटा दी है।"

वैसे मैं और तात्या उम्र में तकरीबन बराबरी के ही थे, पर मैंने उसी समय मन में ही निश्चय कर लिया था कि आमरण तात्या और बालकृष्ण की माँ का ही किरदार निभाऊँगी।

मेरे पिताजी से तात्या ने बिल्कुल बड़े लोगों जैसी भंगिमा में कहा था – हम भाभी को फूल जैसी रखेंगे। पर वास्तव में तो अंग्रेजों के प्रति इतने कठोर देवरजी के मन में मातृभूमि के प्रेम के झरने को मैंने ही फूल जैसा सँभाला था।

तात्या पढ़ाई के लिए पुणे जा रहे थे। निकलते समय उनके हाथपर मैंने ही दही दिया था पर उन्हें बिदा करने के लिए मेरा मन बिल्कुल तैयार नहीं हो रहा था। आखिर उन्हें छोड़ने के लिए मैं स्थानक तक गयी ही नहीं। तात्या ने मुझे झुककर नमस्कार किया, उनके आँसू मेरे सिर पर गिरे और मेरी अश्रुधारा शुरू हो गयी। जैसे तैसे आँसुओं को रोकते हुए इतना ही कहा – "अपना नाम और रोशन करना है आपको।"

"तू धैर्य की मूर्ति, मेरी भाभी, मेरी स्फूर्ति।" अंदमान के कारागृह से देवरजी ने ये पंक्तियाँ लिखी थीं, पढ़कर मेरा मन भर आया और आँसू बहने लगे।

हम नासिक में थे, तब भगूर का हमारा पुराना मकान पूरी तरह लुट गया था। देवरजी की मैट्रिक की परीक्षा पास आ रही थी। उनका

परीक्षा शुल्क भरना था और मंगलसूत्र और नथनी के अलावा मेरे पास कुछ भी नहीं था। एक-एक करके सारे गहने बिक चुके थे। और एक दिन इन्हें देवरजी का परीक्षा शुल्क जमा करने के लिए भाभी की नथनी बेचनी पड़ी, सुनकर तात्या को बहुत दुःख हुआ।

नासिक में प्लेग ने रुद्ररूप धारण किया था। ससुरजी को प्लेग का उपसर्ग हुआ था। पर हमें घर छोड़ना पड़ेगा इस डर से उन्हें कमरे में बंद कर रखा था। पानी देने पर बढ़ जाता है - सुना था, इसलिए हम ससुरजी को पानी नहीं दे रहे थे। "अरे, कोई आओ रे, कोई मुझे पानी तो पिलाओ।" पर हम उन्हें पानी नहीं दे रहे थे। उसी रात को ससुरजी की प्राणज्याति बुझ गयी।

बाद में इन्हें भी प्लेग हुआ था, पर शीघ्र ही स्वस्थ हो गये और पूर्ववत् देशकार्य में जुट गये।

मंगलवार को मैं उपवास रखती थी; दोपहर को एक ही बार मैं खाना खाती थी। एक मंगलवार को दोपहर देवरजी भिम्या को खाना खाने के लिए साथ ले आये। "अतिथि देवो भव" इस विचार से मैंने उन्हें खाना परोसा। दोनों ने रोटी और अरबी के पत्तों की पतली सब्जी बड़े आनंद के साथ खायी। सारा खाना खत्म हो गया। फिर देवरजी ने पूछा - भाभी, आप नहीं खाएँगी? मैंने कहा - मेरा तो आज मंगलवार का व्रत है। तब जाकर उन्हें याद आया कि मैं तो एक ही बार खाना खाती हूँ मंगलवार को। मेरे लिए पौहे वगैरह कुछ ढूँढने लगे। सारे डिब्बे खाली पाने पर उन्हें बहुत ग्लानि हुई। आखिर मैंने ही कहा, वे भगूर से आएँगे तब खाना बनाकर खा लूँगी मैं।

परमेश्वर भी मेरी सहनशक्ति की परीक्षा ले रहे थे। जब मेरा इकलौता नन्हा बेटा किसी बीमारी के कारण दुनिया छोड़कर चला गया। मैं बहुत रोयी, मैंने देवरजी से कहा - ले ही जाना था तो भगवान ने मुझे बच्चा दिया ही क्यों? तब तात्या बोले - अपना छोटा-सा अभिमन्यु शत्रु से लड़ने गया है, ऐसा ही समझेंगे।

और फिर तात्या और छोटे देवर में ही अपने बालक को देखती और मैं उनकी माँ बनकर ही जीती रही।

इन्हें और देवरजी को हाथ-पाँव में बेड़ियाँ डालकर नासिक शहर में घुमाया गया। अब तो अंग्रेज सरकार ने दोनों को कालेपानी की सजा दी और दोनों को अंदमान भेज दिया। मैं एक बार उनसे मिलने गयी थी। दोनों को बहुत यातनाएँ दी जा रहीं थीं। कोल्हू में जोतकर 12-12 सेर तेल निकलवाते थे। दो जून कुछ पौष्टिक खाने को मिले इसलिए उपोषण किया तो उनकी सहनशक्ति की पूरी पूरी परीक्षा ही ली गयी। कोल्हू खींचते समय तो तात्या कई बार बेहोश हो जाते थे। उन्हें खूनी आँव भी हो गयी थी। दोनों बहुत ही कमजोर हो गये थे, फीके पड़ गये थे, आँखें अंदर धँस गयी थीं। यह सब सुनकर मेरे मन की क्या अवस्था हो गयी होगी?

....पर हे सागर, ले जा मुझे वापस मेरी मातृभूमि को कहनेवाले तात्या को और इन्हें एक ना एक दिन सागर अपनी लहरों पर बिठाकर मातृभूमि की गोद में जरूर जरूर वापस ले आएगा। परंतु वह सुनहरा क्षण देखने के लिए मैं रहूँगी कि नहीं... यह तो वह जगन्नियंता को ही मालूम है !

3

विष्णु गणेश पिंगळे की माता - सरस्वती बाई

बहुत ही शांत स्वभाव वाले गणेशपंत और बच्चों के लिए अविरल काम करने वाली सरस्वती बाई का बेटा विष्णु गणेश पिंगळे। उसने अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने का संकल्प लेने पर उसकी माँ पर क्या बीती होगी?

मेरा मँझला बेटा केशव घबराया हुआ मेरे पास आया पर अपनी वृद्ध माँ को कैसे खबर करे कि वह इसी विचार में डूबा हुआ था। आखिर वह बोल ही पड़ा - माँ तुझे कैसे बताऊँ, अपना विष्णु फँस गया। अपने ही देश के नादिर खान ने उसे पकड़वाया है। उसके पास अठारह बम मिले हैं। एक अखबार में जो खबर छपी थी, केशव ने मुझे पढ़कर सुनायी। पुलिस सुपरिंटेंडेंट विल्किन्सन ने कहा था - उसके पास जो बम मिले हैं वे इतने

शक्तिशाली हैं कि उनसे आधा सैन्यपथक नष्ट किया जा सकता है।

मेरा विष्णु, कितना महत्त्वाकांक्षी था। उसे बहुत-बहुत सीखना था। बचपन से ही मीठी रसीली बोली बोलने वाला। कैसा गोरा-चिट्टा, वह स्वातंत्र्य पर जब भाषण देता तो उसकी काली-काली चमकीली आँखें और भी तेजस्वी दीखती थीं।

ये शुरू से ही शांत स्वभाव के थे। मेरे ससुरजी गोविंदराव बहुत नामी वकील थे। हम तळेगांव-ढमढेरे में रहते थे। विष्णु के पिताजी बच्चों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते थे। इसलिए बच्चों की पूरी जिम्मेदारी मुझपर ही थी।

एक बार इन्हें दासनवमी के दिन सज्जनगढ़ जाने की इच्छा हुई थी पर उम्र के कारण गढ़ पर चढ़ना संभव नहीं था। तो विष्णु ने इन्हें अपनी पीठ पर बिठाया और ले गया - सीधे गढ़ के ऊपर जा कर ही उतारा।

विष्णु का पिंड ही अलग था। उसका दूसरा नाम था - बाबूराव। अभिनव भारत में वह काम करने लगा था। कभी पंजाबी बनकर, तो कभी बंगाली बनकर काम करता था। मुझे तो हमेशा ही डर लगा रहता था।

जून 1911 में मालूम नहीं, उसके मन में क्या आया अवशा नामक गाँव में हाथ-करघे पर काम करता था। एक दिन अचानक आया, हमें बहुत ही आश्चर्य हुआ। वैसे विष्णु जरा झटकेबाज था और पढ़ाई के लिए वह कुछ भी कर सकता था। उसने जमा किये हुए 1200 रुपये मुझे दिखाए। मुझे बहुत आनन्द हुआ। मैंने सोचा, चलो आगे की पढ़ाई की व्यवस्था हो गयी।

विष्णु क्रांति का कार्य करता था इसलिए कहाँ जाना है कभी भी नहीं बताता था। एक बार गाँव से पुणे के लिए निकला। केशव ने बैलगाड़ी निकाली। गाँव छोड़कर बैलगाड़ी बाहर बड़े रास्ते पर आयी ही थी कि विष्णु के शब्द आये - मैं मैकेनिकल इंजीनियरिंग सीखने अमेरिका जा रहा हूँ। पहले तो केशव की समझ में कुछ भी नहीं आया पर बाद में पागल जैसे एक प्रश्न करता गया। अन्त में उसने कहा - कम

से कम माँ-बाप, बड़े भाई महादेव की तो सहमति ले लेते।

पर विष्णु विचारों का पक्का था। उसने केवल से इतना ही कहा - तू माँ और बाबा को इतना संदेश दे दे। बाद में मैं पत्र भेज दूँगा।

फिर वह तोकामारू नामक जापानी ज़हाज से अमेरिका पहुँच गया, बस इतना ही पता चला। मैं रोज उसके पत्र का इन्तजार करती। पर पत्र आया एकदम अगस्त में। उसके बाद वाले पत्र में लिखा था कि सिएटल विद्यापीठ में अंग्रेजी, चित्रकला, गणित, विज्ञान आदि विषयों का अध्ययन उसने कैसे पूरा किया। उस समय वह इण्डिया हाउस में गरीब विद्यार्थियों के साथ रहता था। काम करो और पढ़ाई करो इसी तरह उसका चल रहा था।

अधिक परिश्रम, ढंग से न भोजन, न विश्रांति इस कारण उसका वजन बहुत कम हो गया था। पर वह पीछे नहीं हटा। किन्तु पिताजी गये - यह पढ़कर उसका मन बहुत विचलित हो गया था, तब उसके मित्रोंने उसे बहुत सँभाल लिया। उसने अपना एक फोटो भेजा और सांत्वना करते हुए पत्र भेजा था। उसे बार-बार मेरी याद आती थी। मेरे लिए वह बहुत भावुक हो जाता था। पर उसे अपनी पढ़ाई भी तो पूरी करनी ही थी, यह भी तो उतना ही सच था।

इसी दरमियान उसकी मुलाकात हुई स्वातंत्र्य प्राप्ति की शपथ लेने वाले स्वातंत्र्यवीर सावरकर और संघर्ष पार्टी के लाला हरदयाल जी से।

फिर एक दिन पता चला कि क्रान्तिकारियों के साथ कोमा गाटा मारू जंहाज से हिन्दुस्थान वापस आया है। यहाँ आने पर उसे रासबिहारी बोस मिले और दोनों ने हिन्दुस्थान की सेना में ब्रिटिश सत्ता के विरोध में असंतोष फैलाना शुरू कर दिया। क्रान्ति की भनक पंजाब के गवर्नर मायकेल ओडवायर को पहले मिली एक स्वदेशी बंधु से - उसका नाम था कृपालुसिंह।

पर विष्णु उस समय हाथ ही नहीं लगा। फिर कभी पंजाबी बनकर, तो कभी बंगाली श्यामलाल तो कभी राव बनकर उसने "संघर्ष

संदेश" के पत्रक बाँटे, क्रान्तिकारी भाषण दिये। उसे मराठी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी भाषाएँ भली भाँति आती थीं।

पहली सशस्त्र क्रान्ति नाकामयाब हुई। वह क्रान्ति मेरठ-षड्यंत्र के नाम से जानी जाती है। उस समय विष्णु और रासबिहारी वहाँ से छूट गये। पर जब फिर से क्रान्ति की योजना बनाने लगे, तो एक दिन - "आपके पास जैसे बम हैं, वैसे और दिलाता हूँ" कहकर नादिरखान विष्णु को साथ ले गया। रासबिहारी जी के मना करने के बावजूद विष्णु उसके साथ गया और अंग्रेजों के हाथ लग गया।

मुझे लेकर केशव मेरठ के लिए रवाना हुआ। विष्णु की याद में मन बार-बार भर आता था। ज्ञानप्रकाश में हमने खबर पढ़ी और हम हतप्रभ हो गये। हमें विष्णु के इस कार्य की कोई जानकारी नहीं थी। हम वहाँ पहुँचे तो विष्णु ऐसे सामने आया जैसे कुछ हुआ ही न हो। मेरे पाँव छूकर मुझे नमस्कार किया और बोला "फालतू में किसी वकील को पैसे मत दे देना। वे हमें फाँसी देने वाले हैं।" विष्णु के शब्द बाण की तरह सीधे हृदय में जा लगे। आँखों से आँसू झरने लगे, कोशिश करने पर भी नहीं रुक रहे थे। आँसू भरी आँखों से उसकी ओर देखते हुए मैंने पूछा - "मेरे बेटे, मरने का डर नहीं लगता तुझे?" बाकी तो सब कुछ आँसुओं में घुल गया।

मुझे ऐसा रोते देखकर वह बोला - माँ, मातृभूमि को स्वतंत्र करना है, यही मेरी उत्कट इच्छा है, यही मेरी अंतिम इच्छा है। इस जन्म में मातृभूमि का ऋण चुका रहा हूँ। अगले जन्म में तेरा ऋण चुकाने तेरे ही पेट से जन्म लूँगा।

क्रान्ति के समय अंग्रेजों ने जिसे - चाणाक्ष और हिम्मतवाला पुणे, महाराष्ट्र का ब्राह्मण कहा था, वह मेरे विष्णु अपने वंश का नाम रोशन करते हुए अपनी मातृभूमि की सेवा में अपने मित्र कर्तारसिंह सराभा के साथ फाँसी पर चढ़ गया। मेरा विष्णु शहीद हुआ और मुझ जैसी करोड़ों माताओं और बहनों के हृदय में हमेशा के लिए बस गया।

चंद्रशेखर आजाद की माँ - जगदानी देवी

अतिशय गरीब पंडित सीताराम और जगदानी देवी के पुत्र चन्द्रशेखर आजाद ने सर फरोशी की तमन्ना .... कहते हुए देशकार्य के लिये अपने आपको समर्पित कर दिया था। उस इकलौते बेटे की माँ अंदर ही अंदर कैसी रोती होगी। फिर भी अपने दिल पर पत्थर रखकर उसके कार्य में हमेशा साथ देती रही।

दोपहर के बारह चुके थे। मैं भोजन के लिए चंद्रशेखर की राह देख रही थी। उसके पिताजी भी अंदर बाहर आ-जा रहे थे। बीच में ही

रुककर मेरी ओर मुड़कर बोले कहाँ है शेखर? तुम्हारे लाड़ प्यार ने इसे बिगाड़कर रखा है। समय पर खाना खाने नहीं आना चाहिये क्या? अब आने दो, उसे ठीक करता हूँ ....

मैंने घबराकर कहा, अभी छोटा है, बड़ा हो जाएगा, तो अकल आ जाएगी। जरा शांत हो जाइए।

उसी समय शेखर को सामने से आते देखकर वे गरज पड़े - कहाँ गया था? वह बोला - गुलाबसिंह जी को पुलिस पकड़कर ले जा रही थी, वह देख रहा था। मैंने घबराकर एकदम पूछा - किसे ले गये? क्या किया था उन्होंने? उसपर वह बोला - वे वन्दे मातरम् बोल रहे थे। फिर मेरी ओर देखकर बोला - माँ मैंने पेड़ के पीछे छिपकर पुलिसवालों को पत्थर मारे और घर भाग आया।

फिर इनसे पूछने लगा - वन्दे मातरम् याने माँ को नमस्कार है ना? फिर वैसा बोलने पर पुलिसवाले मारते क्यों हैं? इन्होंने समझाया - अंग्रेज हमारे दुश्मन हैं। उन्होंने अपने देशपर कब्जा कर रखा है। और आजादी के लिए अपनी भारतमाता के सुपुत्र वन्दे मातरम् कहकर अंग्रेजों का मुकाबला करते हैं। तुरन्त अपने सीने पर हाथ रखकर शेखर बोला - फिर तो मैं भी वन्दे मातरम् बोलूँगा।

मैंने कहा - ना बेटे, पुलिसवाले तुझे पकड़कर पीटेंगे।

शेखर ने कहा - माँ, तुम घबराओ मत, मैं तो उनके हाथ ही नहीं लगूँगा।

चन्द्रशेखर से पहलेवाले सब बच्चे जन्म के तुरन्त बाद मर गये। शेखर भी जन्मा तो बहुत ही कमजोर था। हम अलीराजपुर के भामरा गाँव के पास एक झोपड़ी में रहते थे। शेखर के पिताजी एक बगीचे के रखवालदार थे। गाँव में उनकी पहचान एक ईमानदार और सद् वर्तनी आदमी के रूप में ही थी। परन्तु क्रोधी बहुत थे। हम तिवारी कुल के ब्राह्मण।

शेखर दिनभर खेलता रहता था, इसलिए पाठशाला में भरती करवा दिया था। पर पाठशाला में भी ज्यादा दिन नहीं टिका। मुझे हर तरह मनाने की कोशिश करके और पिताजी को कुछ बताए बिना ही वह एक दिन बनारस चला गया। वहाँ वह मज़दूरी करता था।

एक दिन किसी सज्जन ने इसके गले में जनेऊ देखकर बड़े आश्चर्य से पूछा – तुम ब्राह्मण हो और फिर मज़दूरी क्यों करते हो? तिसपर इसने हँसते हुए जवाब दिया – पेट के लिए । पर उस सज्जन ने इससे वह काम छुड़वाया और अन्नछत्र में भरती करा दिया। वहाँ संस्कृत पाठशाला में दाखिला दिला दिया।

सन 1921 में इंग्लैण्ड के ड्यूक ऑफ विण्डसर हिन्दुस्थान में आनेवाले थे। काँग्रेस ने उनके आगमन का बहिष्कार किया था। चन्द्रशेखर की संस्कृत पाठशाला के छात्र बहिष्कार में शामिल हुए थे। सबको गिरफ्तार किया गया। पर शेखर सबसे छोटा था इसलिए उससे पुलिस अफसर ने पूछा – तेरा नाम क्या है?

इसने कहा – आजाद।

पुलिस अफसर ने पूछा – तेरे बाप का नाम?

इसने कहा स्वातंत्र्य।

पुलिस अफसर ने पूछा – रहता कहाँ है?

इसने कहा – जेलखाना।

पुलिस अफसर को गुस्सा आया – मारो इसे पंद्रह कोड़े।

पुलिसवाले इसे एक खंभे से बाँधने लगे, तो इस बालक ने कहा – बाँधते क्यों हो? मैं तो खड़ा हूँ – मारो कोड़े। फिर हर कोड़े की मार पर बालक जोर-जोर-से बोलता रहा – वन्दे मातरम्, भारतमाता की जय। पीठसे चमड़ी लटकने लगी, खून बहने लगा पर वन्दे मातरम्, भारतमाता की जय चालू था। मलहम-पट्टी के लिए पुलिस ने जो पैसे दिये तो बालक ने पुलिस के ही मुँह पर दे मारे।

लोगों ने जुलूस निकाला, शेखर को टेबल पर खड़ा किया क्योंकि सब लोग उसे देखना चाहते थे। और चौदह साल का शेखर हारों के नीचे दब गया। उसी दिन से चन्द्रशेखर तिवारी चन्द्रशेखर आजाद हो गया।

उसी समय बाबाराव सावरकर काशी आये थे। चन्द्रशेखर उनसे मिलने गया तो उन्होंने कहा – तुम हमारे क्रान्तिदल में शामिल हो जाओ। हमें तुम जैसे निडर और हिम्मतवाले लोगों की जरूरत है। उनके आशीर्वाद से शेखर ने क्रान्तिकार्य में अपने आप को अर्पण कर दिया।

शेखर जब-जब घर आता, जहाँ तक बन सके मैं उनकी मदद करती। उनहें जरूरत थी हथियारों की, उस हिसाब से मेरी मदद तो बहुत कम पड़ती थी। फिर क्रान्तिकारी अमीरों के घर लूटने लगे। अंत में बहुत जरूरत पड़ने पर लखनऊ से आठ किलोमीटर पर काकोरी का सरकारी खजाना लूटा। काकोरी षड्यंत्र के बाद शेखर बैरागी बनकर, अशफाक फकीर बनकर, भगत अंग्रेज अधिकारी बनकर, तो शिवराम उसका नौकर बनकर भाग गये।

मैं बार-बार बीमार पड़ती थी। एक बार भगत और सुखा मुझसे मिलने आये थे। शेखर के बाबत भगत कुछ सुना रहा था – माताजी, मैं एक बार आजाद जी का मजाक उड़ा रहा था। मैंने उनसे कहा – पंडितजी, आपको बाँधने के लिए पुलिस की दो बड़ी-बड़ी रस्सियाँ लगेंगी, एक तो आपके हाथ-पाँव बाँधने के लिए और एक आपकी तोंद बाँधने के लिए। तो उन्होंने झट से कहा – हम जीते जी तो पुलिस के हाथ लगेंगे नहीं। हम आजाद हैं, आजाद ही रहेंगे।

एक बार सावरगांवकर के पास शास्त्री जी के भेष में अपनी शाल में हथियार छिपाकर हैदराबाद से काशी तक आया। सावरगांवकर से गले मिलकर हथियार लेते हुए चन्द्रशेखर बोले – "तू तो शिवाजी महाराज का सच्चा मराठा सैनिक है।"

सुखा एक बार बता रहा था – एक बार हम बैठे थे कि

भगवानदास जी ने सुर लगाया – हृदय लागी प्रेम की बात निराली, "मन्मथशर हो.." आजाद जी एकदम क्रोधित हो गये। "अजी, हृदय में मन्मथशर नहीं लगेगा अब। थ्री-नॉट-थ्री की गोली लगेगी। क्या प्रेम-गीत गा रहे हो। बम फटकर, पिस्तौल झटककर ऐसे गाओ।" आजाद जी खुद गाने लगे – "दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे। आजाद हैं हम, आजाद ही रहेंगे।"

भगत ने कहा – हम तो सुनते ही रह गये। भगत ने जाते जाते मेरे पाँव पर सिर रखा और बोले – माता जी, आप धन्य हैं, आपने तो मकान बेचकर हमें पैसे भेजे। पंडित जी ने भी पाँव का कड़ा और करधनी बेच डाली। मैंने कहा – तुम्हारी माँ ने भी तो भारतभूमि के लिए अपना पुत्र दे दिया हैं। उन्होंने भी तो कितना त्याग किया है।

सायमन कमीशन का विरोध करते समय लाला लाजपत राय जी पर डण्डे पड़े थे, उसी के कारण उनकी मौत हुई थी। उनकी मृत्यु के लिए जवाबदार स्कॉट और सॉण्डर्स को मारने का बीड़ा उठाया था हिंदुस्थानी समाजवादी प्रजातंत्र संघ ने। स्कॉट मुख्य पुलिस अधिकारी तो छूट गया पर डिप्टी अधिकारी सॉण्डर्स को शिवराम और भगतसिंह ने गोली मारी। हेड कॉन्स्टेबल छननसिंह उनका पीछा करते हुए दौड़ने लगा। शेखर ने उस पर पिस्तौल तानकर रुकने का इशारा किया, पर वह नहीं रुका, पीछा करता ही रहा, तो शेखर को छननसिंह पर गोली चलानी ही पड़ी।

सुरक्षा की इतनी कड़ी व्यवस्था के बावजूद भी शेखर और भगतसिंह ने दीवारों पर पत्रक चिपकाये – सॉण्डर्स मारा गया। लाला जी की मौत का बदला ले लिया। क्रान्ति अमर रहे। बलराम कमांडर इन चीफ (हिं.स.प्र.सं.)

बलराम याने मेरा शेखर ... शेखर ही।

शेखर का मित्र, सदाशिव मलकापूरकर मुझे झांसी लाया था। मैं बीमार ही थी। खटिया पर पड़ी रहती थी। खटिया पर पड़े-पड़े ही एक

दिन सदाशिव से पानी माँगा – बेटे, प्यास लग रही है। मेरे हाथ में पानी का प्याला आया। मेरी बन्द आँखों के परे जिस हाथ का स्पर्श हुआ वह सदाशिव का नहीं था। सदाशिव का प्रेम भी पुत्र से कम नहीं था। आँखे बन्द थीं, पर मेरी आत्मा ने वह स्पर्श पहचान लिया था। पर... पर... क्षणभर में मैंने आँखे खोली। मेरे पास बैठते हुए पूछा – माँ, कैसी हो? वेश बदलकर साधुओं के जत्थे के साथ यहाँ तक पहुँच गया था मुझसे मिलने के लिए। मैंने उससे कहा – बेटे, क्रान्ति का कार्य जरूर करो पर पुलिस के हाथ नहीं लगना। वे बहुत यातनाएँ देते हैं। उस पर उसने एकदम कहा नहीं माँ, मैं वचन देता हूँ, वैसी ही स्थिति आएगी तो पहले अपनी ही हत्या कर लूँगा।

दो दिन मेरे पास रुक कर कलकत्ता के लिए रवाना हो गया।

और .... एक दिन सुबह-सुबह सपना देखा – शेखर एक बाग में सोया था कि पुलिस ने सब तरफ से उसे घेर लिया। जैसे ही वह जागा बड़ी शान्ति से अपनी प्यारी पिस्तौल – बमतुल्ला बुखारा में एकही गोली बची थी। उसने शान्ति से पिस्तौल उठायी और अपने सिर पर लगा कर गोली चला दी ..ठो.. उस आवाज के साथ ही मैं जागी। पसीने से तर-वतर हो गयी थी। जागी तो, सदाशिव पास में खड़ा था। क्या हुआ माँ जी? कुछ नहीं बेटे, कहते हैं सुबह का सपना सच होता है। शेखर का भविष्य मुझे मालूम हो गया था।

हाँ, पहले तो मैं ही जाऊँगी। पर शेखर मुझे अग्नि तो दे नहीं सकेगा, मुझे मालूम था। अपने पिताजी से भी वह आखरी समय मिल नहीं पाया था। क्रान्तिमैया की डोली उसके कन्धों पर जो थी। मुझे मालूम है, शेखर की माँ को हजारों बेटे कन्धा देंगे पर भगवान से बार-बार यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। मुझे हर जन्म में यही पुत्र दे – मेरा शेखर ....

अशफाक उल्ला खाँ की अम्मी - रोशनबी

अच्छे दोस्तों का साथ मिल जाए तो सोने में सुहागा - यह अशफाक उल्ला की माँ रोशनबी को पूरी तरह मालूम था। फिर एक अमीर घर में जन्मे अपने बेटे को मातृभूमि पर न्यौछावर करते समय उस माँ के कलेजे में कितनी वेदनाएँ हुई होंगी?

रियासत मेरा बड़ा बेटा और उसके मित्र रामप्रसाद में किसी बात को लेकर झगड़ा हो गया था। एक दिन रामप्रसाद घर पर आया था, पर रियासत ने उसे हाथ पकड़कर बाहर निकाल दिया। उस पर अशफाक मेरा छोटा बेटा अपने बड़े भाई रियासत से कहने लगा - भाईजान, घर आये मेहमान से ऐसा बर्ताव अच्छा नहीं। रियासत ने अशफाक पर

चिल्लाकर कहा - तू चुप बैठ, मुझे सिखाने की जरूरत नहीं। ऐसे बे़वकूफों को दोस्त बनाना धो़खा है। और फिर दोनों का झगड़ा बहुत देर तक चलता रहा। मैंने अशफाक से कहा - अशफाक, बड़े भाई के साथ क्यों लड़ता है? उस पर अशफाक ने मेरी ओर मुड़कर कहा - अम्मीजान, रामप्रसाद अलग मज़हब क़ा हो तो क्या? सबका खून तो लाल ही होता है ना? बदन की बनावट तो एक जैसी ही होती है, तो फर्क क्यां होता है?

अशफाक का जवाब मेरी जहन में घर कर गया और मैंने उससे कहा - नहीं बेटे, कोई भी मज़हब बुरा नहीं होता। बुरे लोग अपने मतलब के लिए किसी मज़हब को बदनाम करते हैं। तुम्हारा सोच सही है। रामप्रसाद बहुत अच्छा लड़का है, उसकी दोस्ती कभी मत तोड़ना। और फिर, रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक की दोस्ती फाँसी के फँदे तक बनी रही।

अशफाक का जन्म हुआ तो खानसाहब बहुत खुश हुए। उन्होंने फकीरों को खूब दान दिया। एक फकीर ने अशफाक को देखा और कहा - यह बेटा आपके खानदान का नाम रोशन करेगा। खाँ-साहब ने यह सुनते ही कहा - खुदा की मेहरबानी है। और इसका नाम अशफाक यानि भाग्यवान रखा।

अशफाक जैसे जैसे बड़ा हुआ वैसे वैसे हौद में बैठे रहना, पेड़ों पर चढ़ना, घोड़े की सवारी करना, पतंग उड़ाना दिनभर चालू रहने लगा।

एक दिन अशफाक स्कूल से आया और मुझे बताने लगा। आज मास्टर साहब ने मुझे कहा तुम तो तुलसी हो, किसी को मतलब समझ में नहीं आया, और मेरे यार-दोस्त मेरा मजाक उड़ाने लगे। जब मैंने मतलब पूछा तो वे बोले - तुलसी तन-मन को साफ करती है।

एकबार अशफाक अपने दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा था कि गेंद किसी के घर में चली गयी। उस घर से कोई महिला लड़ने झगड़ने आ गयी। तो इसने नम्रतापूर्वक कहा - माताजी, खेलते हुए ध्यान

नहीं रहा, गलती हो गयी। माफ कर दीजिए। इसके मित्र अहमद ने कहा – अशफाक, तुम खाँ साहब के बेटे होकर भी माफी माँगते हो, यह गलत है। इस पर अशफाक ने दकदम माकूल जवाब दिया – पैसे से कोई छोटा-बड़ा नहीं बन जाता। वैसे भी गलती हो गयी, सो माफी माँग ली, उसमें क्या गलत है?

अशफाक बड़ा हुआ, कॉलेज में जाने लगा, वैसे-वैसे उसके विचार और साफ होते गये। वह क्रान्तिकारी लड़कों के साथ रहने लगा, तो मुझे और अधिक फिक्र होने लगी। रामप्रसाद और अशफाक हमेशा साथ रहंते थे।

एक दिन घर पर बहुत धूम थी, क्योंकि रियासत के बेटा हुआ था। बहुत लोग आये थे। उस समय अशफाक भी आया हुआ था। उसे देखकर एक रिश्तेदार मेरे गले पड़ गयी – रोशनबी, अशफाक की शादी होना जरूरी है। मेरी भांजी बहुत खूबसूरत है। इतना कहकर छेड़खानी करने के लिए अपनी भांजी को अशफाक के सामने खड़ा कर दिया और पूछा कैसी है मेरी भांजी? अशफाक ने शांति से कहा – खूबसूरत है, लेकिन खुदा ने आसमाँ की परी भी भेजी तो भी मैं शादी तो करूँगा ही नहीं। मैं तो देशव्यापी क्रान्तिकारी आंदोलन का एक हिस्सा हूँ। खाँ साहब वैसे भी बहुत गुस्सैल थे। वे एकदम गुस्से से बोले – अशफाक, यह सरासर पागलपन है। उस पर अशफाक ने शांति से कहा – अब्बाजान, एक बेटा आपके पास है; दूसरे को देश के लिए छोड़ दीजिए।

दो दिन बाद अशफाक कॉलेज के नाम से रवाना हुआ। उसके मित्रों के साथ काकोरी षड्यंत्र की चर्चा हुई। नौ लोगों का इस काम के लिए चयन हुआ और नौ अगस्त को इन देशभक्तों ने काकोरी का खजाना लूटा। यकीनन उनमें मेरा अशफाक भी शामिल था।

दूसरे दिन सारे लखनउ शहर को पुलिस ने घेर लिया। बहुतों को शक के आधार पर पकड़ लिया था। हिन्दुस्थानी रिपब्लिकन एसोसिएशन के चालीस लोगों को पुलिस थाने पर रोका गया। अशफाक फरार हो गया

था।

बाद में बुरी खबर आयी कि अशफ़ाक को किसी छोटे से होटल में चाय पीते समय गिरफ्तार कर लिया गया है। अशफाक कैद में है, सुनकर उसके अब्बाजान बहुत परेशान हो गये थे। जनाब अब्दुल कासिम से वकालत कराने के लिए अशफाक को मना रहे थे। पर अशफाक ने नहीं माना। कृपाशंकर हजेला नामक आर्य समाजी से वकालतनामा करवा लिया। हजेला जी ने भी काफी कोशिश की पर सारे ही सबूत उसके खिलाफ ही जा रहे थे। उनकी इतनी कोशिश के बावजूद मेरे अशफाक को फाँसी की सजा सुनायी गयी।

फाँसी से पहले रियासत उससे मिलने गया था, तो अशफाक ने उससे कहा - वतन के लिए कितने ही हिन्दू जवानों ने अपनी जान कुर्बान की है। मैं अकेला पठान उस माला में लॉकेट जैसा हूँ ना? भाईजान, आपके आँसू मुझसे देखे नहीं जाते। मेरी आखरी ख्वाइश पूरी करेंगे? क्रान्तिकारियों के काम में पैसा दीजिए। रियासत ने उसके गले मिलते हुए कहा, "हाँ, मेरे छोटे भाई, तुम्हारी आखरी ख्वाइश जरूर पूरी करूँगा।"

और आखिर हमारे लिए वह काला दिन आ गया - 19 दिसंबर। अशफाक को फाँसी के तख्ते की ओर ले जाते समय भी अंग्रेज अफसरान उससे माफीनामा करवाने को कह रहे थे। तो उसने फटाक से कह दिया - मैं अपने ही वतन के साथ गद्दारी करूँ?

तंग आकर हम भी उनके जुल्म से, बेदाद से ।
चल दिये सुए अदम जिन्दाने फैजाबाद से ।

एक अंग्रेज अधिकारी ने उससे अपनी अन्तिम इच्छा पूछी तो बोला - "पूरी करोगे? तो निकल जाओ हमारे देश से।"

रियासत अशफाक की लाश लेकर लखनऊ आया। हमारे तो कलेजे के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। पर उसके चेहरे पर वही मुसकान

थी। मेरे तो खून का कतरा कतरा शहीद हो चुका था। अशफाक को स्टेशन से घर तक लाया गया, तो लोगों का ताँता लगा था। अशफाक उल्ला शहीद हो गये थे, तो हर कोई उनके आखरी दीदार कर लेना चाहता था।

मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी थी – और आसमान में वन्दे मातरम् की आवाजें गूँज रही थीं। आँसुओं के पर्दे के परे अशफाक की मानो आवाज आ रही थी – अम्मीजान, मैं किसी बुरे काम के लिए तो फाँसी पर चढ़ा नहीं हूँ। मेरे मरने पर आपकी गर्दन हमेशा ऊँची रहेगी, ऐसा ही काम किया है। रोइए मत। मुझे खुशी-खुशी विदा कर दीजिए।

आँसू पोंछते हुए मैंने वन्दे मातरम् कहते हुए अपने लाड़ले अशफाक को विदा किया।

कहाँ गया वह कोहिनूर
किधर गयी मेरी जान
वह तो हो गया वतन के लिए कुर्बान
हो गया कुर्बान ।

सुभाषचन्द्र बोशेर माँ - प्रभावती

प्रभावती और जानकीबाबू के पुत्र भारत के बाहर रहकर मातृभूमि को स्वतंत्र करने का जिनका स्वप्न था, जिन्हें हर जगह हर क्षण मातृभूमि का ही ध्यान था, वे थे सुभाषचन्द्र बोस ....। अपनी माता के प्रति अगाध प्रेम होने पर भी उस माँ से जो अंतिम समय मिल नहीं पाया था, उसकी ममतामयी माता को कैसा लग रहा होगा?

"हुकुमशाह के आश्रय में आये हुए भारतीय उग्र नेता श्री सुभाषचंद्र बोस की आज दोपहर एक विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। वे बैंकाक से टोकियो जा रहे थे।" बीबीसी पर आयी इस खबर को

सुनकर मैं तो एकदम नीचे ही बैठ गयी। हमारे परिवार का दीप बुझ गया, घर-परिवार पर एकाएक अंधेरा छा गया।

शोभाष ... शोभाष ... मेरा मन जोर जोर से रोने लगा। इस उम्र में मुझे यह भी सहना था। पर मेरा पोता शिशिर कुछ और ही सोच रहा था। उसने डी एन बी स्टेशन लगाया रेडिओ पर और विभा - मेरी बड़ी बहू ने रेडियो ही उठाया और मेरे पास ले आयी - सासू माँ, सासू माँ शोभाष ... छोटे बाबू शुनो तो ... इतना ही बोली - "मैं सुभाषचन्द्र बोस ... हाँ मैं जिन्दा हूँ और हमारे बर्लिन स्थित आजाद हिन्द रेडियो से मेरे दुर्दैवी राष्ट्र को स्वातंत्र्य की नवसंजीवनी देने के लिए ..." शोभाष की वह मीठी आवाज सुनकर हमारे सारे घर परिवार को ही मानो संजीवनी मिल गयी।

अपने सभी बच्चों पर पक्षिणी की एक जैसी ममता होती है, पर शोभाष बाकी सभी के लिए राजहंस ही है, यह मैं बहुत पहले जान गयी थी।

एकबार सुभाष के स्कूल में मुख्याध्यापक बेणीमाधव घर पर आये, "जानकी बाबू, आपका बेटा आपका नाम रोशन करेगा"। पाठशाला का एक प्रसंग सुनाया - मैंने छात्रों से पूछा - हिन्दूस्थान जैसा गौरवशाली देश गुलामी की गर्त में किसके कारण फँस गया। सुभाष ने उत्तर दिया - बंगाली लोगों के कारण। बाकी सब लड़के हँसने लगे, तो सुभाष ने कहा - क्या मेरा उत्तर गलत है? अंग्रेज अपने देश में आये तो कलकत्ता बंदरगाह से ही, बम्बई या मद्रास से तो आये नहीं। फिर सब सोचने लगे।

ऐसे ही एक बार संस्कृत के अध्यापक इनसे मिलने आये थे। सुभाष को 100 में से 100 अंक मिले हैं। सुभाष ने पर्चा इतना अच्छा लिखा है कि 100 अंक भी कम पड़ रहे हैं।

सुभाष का विभा भाभी पर विशेष प्रेम था। कॉलेज की सब भली बुरी बातें भाभी को सुनाता। एक बार कह रहा था - भाभी, हमारे यहाँ ओटन नाम के प्राध्यापक हैं। बात बातपर हिन्दुस्थानियों को बुरा

कहते रहते हैं। झांसी की रानी और तात्या टोपे को दगाबाज कहते रहते हैं। हिन्दी लोगों को निग्रो कहते हैं। हम तो अब ज्यादह बरदाश्त नहीं करेंगे। एक न एक दिन विस्फोट तो होगा ही।

सुभाष की एक और खासियत थी। वह मुसलमान मुहल्ले में भी बेखटके चला जाता। वहाँ उसके बहुत मित्र थे। सीधे उनकी अम्मीजान के सामने बैठ जाता और कहता - अम्मी मेरे लिए कबाब बना दीजिए। वे भी बड़े प्यार से बनाकर खिलाती।

सुभाष पदवी परीक्षा में कॉलेज में पहला और विद्यापीठ में दूसरा आया इसलिए इन्होंने उसे आई.सी.एस की पढ़ाई के लिए इंग्लैण्ड भेजा। वहाँ भी चौथा स्थान मिला, पर सरकारी नौकरी में मन नहीं लगा। सीधे राजीनामा लिख कर देशकार्य मे जुड़ गया।

एक बार सुभाष की पुस्तकों की अलमारी में इन्हें सुभाष का लिखा हुआ कागज मिला। उस पर जो लिखा था वह पढ़कर तो इन्हें चक्कर आ गया। लिखा था -

चाहिए - हिन्दुस्थान में लश्करी क्रान्ति करने के लिए जवाँमर्द चाहिये। तनख्वाह - मृत्यु, इनाम -शहीदी, निवृत्ति वेतन आजादी, कार्यक्षेत्र - हिन्दुस्थान की रणभूमि

एक बार सुभाष किसी काम से वियाना गया था और इधर उसके बाबूजी की तबियत बहुत ज्यादा बिगड़ गयी इसलिए उसे तार देकर बुला दिया। पर हवाई जहाज से उतरते ही उसे गिरफ्तार किया गया। जब तक घर आया तब तक इनकी प्राणज्योति बुझ चुकी थी। बाबूजी के लिए वह जैसा रोया, मैं कभी भूल ही नहीं सकती। उस समय भी वह सरकार की नजरकैद में ही था।

हरिपुर में हुए काँग्रेस अधिवेशन में वह अध्यक्ष था पर त्रिपुरा में जनमत के कारण और महात्मा जी के अहिंसावादी सिद्धान्त और सुभाष के क्रान्तिकारी विचारों के कारण कुछ लोगों ने सुभाष को राजीनामा देने के लिए बाध्य किया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुरजी ने सुभाष पर पत्रों की झड़ी लगा दी थी, इसलिए सुभाष उनसे मिलने गया और उनसे कहा – हिन्दुस्थान के प्रत्येक स्त्री–पुरुष को आगे आना चाहिए, दरिद्रता के विरोध में लड़ना चाहिए – रवीन्द्रनाथ जी एकदम सहमत हो गये।

फिर वह दिन आया, जब बिना किसी कारण के, केवल संदेह के कारण सुभाष को जेल में डाल दिया गया। सुभाष ने कारण जानने के लिए आमरण उपवास किया। अंत में जब जीर्णशीर्ण हो गये, तब उसे घर ला कर छोड़ दिया। वरना सारा कोलकत्ता शहर एक–एक अंग्रेज की जान लेने खड़ा हो जाता।

पर घर में भी वह नजरकैद में ही था। घर के बाहर जाने में भी उस पर पाबंदी ही थी। घर के बाहर दो पुलिस अफसर खड़े ही रहते थे।

सुभाष के कठोर व्रतवैकल्य चालू हो गये। कमरे का दरवाजा बन्द रहता था। कोई उससे मिल नहीं सकता था। मैं भी मिल नहीं सकती थी। जब भी दिखता, दाढ़ी बढ़ी हुई, बाल बिखरे हुए ही दिखते।

रोज धोबी कमरे के बाहर रेशमी धोती और चादर रख कर जाता। फिर नहाने ही आवाज आती, भोजन की खाली थाली यही सिर्फ उसके अस्तित्त्व की निशानी थी।

और फिर .. 27 दिसंबर का दिन। जॉन व्रीन ने रुष्ट आवाज में पूछा – "सुभाष कहाँ है? आज कोर्ट की तारीख है।"

ऊपर की मंजिल से ओरविंदो, मेरा पोता दौड़ता हुआ आया – कोथाय रंगाकाका? रंगाकाका कोथाय आछे? मैं भी दौड़ती हुई आयी। सुभाष के खाली बिस्तर की ओर तो मैं पागल जैसी देखती ही रह गयी। सामने मेरा बड़ा बेटा शरद आया। उसके गले लगकर रोते हुए मैं बार–बार पूछती रही – "आमार सुभाष कोथाय आछे? सुभाष के निये गिया छे? आमाके ना बोले कोथाय गिया छे?" इसी समय विभा ने धीरे से एक कागज मेरे हाथ में दिया, उस पर सिर्फ एक शब्द लिखा था –

"माँ"।

धीरे-धीरे खबरें आती गयीं। सुभाष अफगानिस्थान से जर्मनी गया। वहाँ से आगे जापान गया। रासबिहारीजी की आजाद हिन्द सेना को इसने खूब बढ़ाया। एमिली नामक लड़की से शादी की वगैरह।

पर... पर... अब मुझे मालूम हो गया कि अब मैं और मेरा सुभाष इस जन्म में तो मिल नहीं सकेंगे। इन्होंने सुभाष के नाम जो पत्र लिखा था, उनके शब्द हमेशा याद आते हैं। तुझ जैसा पुत्र हमारे पेट जन्मा इसी बात का हमें गर्व है।

हाँ, मैं भी अपना शुभाशीष इस हवा के झोंके के साथ भेजती हूँ अपने बेटे को। बेटे .. तेरे हर काम में तू यशस्वी हो। तेरा नाम आसमान में गूँजता रहे। और ... इसी समय रेडियो पर मेरे लाड़ले की आवाज आयी ...

"तुम मुझे खून दो
मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"

भगतसिंह दी बेबे - विद्यावती

विद्यावती और किशनसिंह का पुत्र शहीदे आजम भगतसिंह, जिसने मातृभूमि के लिए फाँसी पर चढ़ते हुए दुनिया के नक्शे पर अपनी मातृभूमि का नाम रोशन कर दिया।

हिन्दुस्थान को आजादी मिली और राज्यसरकार ने मुझे राजमाता का खिताब दिया - विद्यावती राजमाता ... नहीं-नहीं मुझे राजमाता का खिताब नहीं चाहिए। मैं तो सिर्फ भगत दी बेबे हूँ - बस, मेरे लाड़ले भगत दी माँ हूँ। मेरा दुलारा, प्यारा, मेरी अक्खाँ दा तारा ... मेरा भगत।

भगत छोटा था - गेहूँ की बुवाई चल रही थी, पर भगत कुछ और ही कर रहा था। उसके चाचाजी ने पूछा - काके, तू की कर रया ओत्थे? भगत ने झटसे जवाब दिया - बंबूक (बंदूक) बो रहा हूँ। फिर

उसमें से बहुत सारे बंबूक के पेड़ लगेंगे। उनपर बहुत सारी बंबूकें लगेंगी। फिर सारे अंग्रेजांनु ठाँ...ठाँ करके मार डालूँगा मैं।

बाहर खेलता हो और कोई पूछे कि क्या खेल रहा है – तो उसका एक ही जवाब होता था – बंबूक चला रहा हूँ। अंग्रेजां नूं मार रहा हूँ।

हमारा संयुक्त परिवार था। दादाजी ने उसे खालसा स्कूल में दाखला दिलाया पर दो दिन भी नहीं हुए थे कि इसने जिद्द करना शुरू किया – मैं स्कूल नहीं जाऊँगा। दादाजी ने पूछा – क्यों पुत्तर, क्यों नहीं जाएगा? की होया? इसने झटसे जवाब दिया – "God, save the King !" ऐसे अंग्रेज राजा के लिए प्रार्थना बोली जाती है। मैं अंग्रेज राजा के लिए ऐसी प्रार्थना नहीं बोलूँगा। मैं स्कूल नहीं जाऊँगा। फिर दादाजी ने उसका स्कूल बदल दिया।

भगत जब सातवीं में था, तब जलियाँवाला बाग में जनरल डायर ने जो क्रूर हत्या काण्ड किया था उसमें कई बच्चे, कई जवान, कई जनानियाँ, कई बूढ़े मरे थे। उनके खून से वहाँ की मिट्टी लाल हो गई थी। सब दूर वही चर्चा । सब दूर प्रतिशोध की हवा में ही हर कोई साँस ले रहा था। पर सब दूर डर का वातावरण बना हुआ था।

ऐसे ही एक दिन, शाम हो गयी, पर भगत स्कूल से लौटा ही नहीं था। मुझे डर लगने लगा। भले बुरे विचार मन में आने लगे। आँखों से आँसू झरने लगे। साँझ ढलने लगी। दिये–बत्ती का समय हो गया। तब कहीं भगत घर आया। मैं तो एकदम उसे मारने ही लगी – कहाँ गया था स्कूल से? पर वह शांति से बोला – जलियाँवाला बाग में। क्या, जलियाँवाला बाग में? मैं चिल्लायी – लाहौर से दस मील दूर है जलियाँवाला बाग। क्यों गया था? मैं वैसे ही और चिल्लाती रही, पर वह बोला – देखो, भगत दी बेबे, बोतर भर शहीदों के खून से सनी हुई मिट्टी ले आया हूँ। इस खून की रोज मैं पूजा करूँगा।

फिर रोज उस बोतल पर फूल चढ़ाता था।

एक बार अंग्रेजी में सिर्फ 35 नंबर मिले, तो दादी ने उसे छेड़ा। तो झट् से बोला – अंग्रेजी के पाठ पढ़ते समय हम हिन्दुस्थानियों पर जुल्म करने वाले अंग्रेज़ ही मुझे दीखने लगते हैं। और फिर मैं बन्द कर देता हूँ अपनी किताब।

भगत बड़ा हो गया, तो उसके पिताजी उसकी शादी तय करने लगे। मैंने उनसे कहा – "एक बार पूछ तो लीजिए।" मेरी बात इन्हें जँची नहीं। पर मेरे बार–बार कहने पर एक दिन इन्होंने पूछ ही लिया। तो वह एकदम बोला – "मैं शादी–ब्याह तो करूँगा नहीं। अपनी सारी जिन्दगी अपनी मातृभूमि के लिए अर्पित कर रहा हूँ। शादी तो मुझे करनी ही नहीं है।"

वे तो एकदम नाराज हो गये। इनके हाथ में लकड़ी थी, उसी से भगत को मारने की इच्छा हुई थी, पर मेरे कहने पर इन्होंने कुछ संयम रखा। वे भगत के निर्णय से सहमत नहीं थे।

और एक दिन भगत "मैं क्रान्तिकारी संगठन में शामिल हो रहा हूँ" ऐसी चिट्ठी रखकर घर छोड़कर चला गया। मेरे तो पैरों तले जमीन खिसक गयी। क्योंकि इससे पहले भी मेरे दो देवर – अजीतसिंह और स्वरणसिंह भारतमाता के लिए शहीद हो चुके थे। खून तो उसी खानदान का इसकी भी रगों में दौड़ रहा था।

एक बार दादी को देखने और हम सब से मिलने घर पर आया था तब उसने बलवंतसिंह नाम से लिखी कविताएँ मुझे दिखायी थीं। कितने अच्छे विचार थे उन कविताओं में। उस समय मुझे पता चला कि चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खाँ, सुखदेव, राजगुरू, बटुकेश्वर दत्त सारे इसके मित्र थे।

सब दूर अशान्ति फैली थी। अंग्रेजों के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। उसी समय सायमन कमीशन आया। लाला लाजपतराय और उनके सहयोगियों ने सायमन कमीशन का विरोध किया।

"Go back Simon!" की आवाजें आसमान तक पहुँच रही थीं।

इसी बीच लालाजी पर भी डण्डे पड़े। उसी कारण लालाजी की मौत हुई। वाहे गुरु। लालाजी मातृभूमि के लिए शहीद हो गये।

सभी क्रान्तिकारी संगठन क्रोधित हो गए। लालाजी की हत्या का जबरदस्त बदला लेने का उन्होंने बीड़ा उठाया। उनकी हत्या के लिए जिम्मेदार पुलिस अधिकारी स्कॉट और सॉण्डर्स को मारना तय हो गया। स्कॉट तो बच गया पर सॉण्डर्स को मारने में आजाद सफल हो गये। भगत ने अंग्रेज साहब की वेशभूषा कर ली, दुर्गाभाभी उसकी पत्नी बनी और राजगुरु उनका नौकर बनकर फरार हो गये।

पर, फिर सेंट्रल असेंबली में काला कानून पास होनेवाला था। भगत ने और बटुकेश्वर ने असेंबली में बम फेंके। एकदम भागा-दौड़ी मची। ये दोनों "इन्किलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यशाही मुर्दाबाद" के नारे लगाते हुए वहीं खड़े रहे। अंग्रेजों ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया।

"हमने बम किसी की हत्या के लिए नहीं फेंके थे। बहरों को सुनाने के लिए बारूद की जरूरत होती है।" ऐसा मुँहतोड जवाब दिया।

भगत कैद में था, तो हथकड़ियाँ पहनकर हम कोर्ट नहीं जाएँगे, ऐसी सभी राजबंदियों ने माँग की थी। पर अंग्रेजों ने माँग मंजूर नहीं की। उल्टा राजबंदियों को बहुत पीटा। तो भगतसिंह ने उपोषण का रास्ता दिखा दिया। पहले तो लाहौर भड़का, फिर बरेली, फिर तो देखते-देखते सारा हिन्दुस्थान भड़क उठा।

अन्त में अंग्रेजों को झुकना पड़ा, राजबंदियों की माँग मंजूर करनी पड़ी। मेरे भगत का नाम सारे हिन्दुस्थान में बड़े गर्व के साथ लिया जाने लगा।

और, एक दिन खबर आ ही गयी ... भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा सुनायी गयी। मेरे ऊपर तो आसमान ही टूट गया। भगत से मिलने के लिए मैं दादी जी को लेकर जेल गयी तो बेड़ियों के ताल पर भगत गा रहा था। -

कभी वो दिन भी आएगा, जब आजाद होंगे हम ।
ये जमीं अपनी होगी, ये आसमाँ अपना होगा ।
शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले ।
वतन पर मर मिटने वालों का यही नामोनिशाँ होगा ।

मेरी आँखों से गंगा-जमना बहने लगी। मुझे रोती देखकर भगत बोला - "भगत दी बेबे, तू क्यों रोंदी है? शेर दी माँ कभी रोंदी है? मुझे रोना बिल्कुल पसंद नहीं है।" मैं आँसू तो पी गयी। मन में तो रो ही रही थी।

और ... और वह काला दिन आया - 23 मार्च 1931 । भगत, राजगुरु और सुखदेव तीनों को एक ही दिन फाँसी देने वाले थे। खबर आग जैसी सब दूर फैली। भगत के पिताजी, राजगुरु की माँ और सारा लाहौर शहर कारागृह की ओर दौड़ पड़ा।

भगत, राजगुरु और सुखदेव तीनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर भगत का पंसदीदा गाना - मेरा रंग दे बसंती चोला - गाते गाते बड़ी खुशी से फाँसी के तख्त तक गये। तीनों ने अपने हाथों से फाँसी का फँदा अपने गले में डाल लिया। क्या हिम्मत थी इन शेरों की।

जेल के बाहर तीनों के नाम से जयघोष हो रहा था। इन्किलाब जिन्दाबाद के नारे आसमान तक गूँज रहे थे। उधर कारागृह के अंदर क्रूर अंग्रेजों को इन तीनों शेरों की लाशों का डर सता रहा था। इसलिए उन डरपोकों ने इन तीनों की लाशों को कारागृह के पिछले दरवाजे से बाहर निकाल कर सतलज के किनारे घासलेट डालकर जला दिया। जैसे ही यह खबर भगत के पिताजी को लगी, वैसे ही सब लोग सतलज की ओर दोड़ पड़े।

तीनों की अधजली लाशें इन्किलाब जिन्दाबाद के जयघोष के साथ हुसैनीवाला लायी गयीं। मेरा भगत ... सिर्फ 23 साल का, मेरा राजा सो गया मातृभूमि की गोद में। उस अधजले चेहरे पर भी शांत, देशभक्ति का तेजस्वी प्रसन्न भाव दिख रहा था। कारागृह के सारे कर्मचारी,

पहरेदार सब के सब आये थे श्रद्धांजलि देने।

भगत ने आखरी मुलाकात में मुझसे कहा था – "भगत दी बेबे, मुझे रोना बिल्कुल पसंद नहीं है।" पर ... पर ... फिर भी ...।

इन आँसुओं की सौगंध ... भगत के सब भाइयों से एक ही माँग है – मेरा भी अंतिम संस्कार यहीं करना ... स्वर्ग में भगत से जी भर कर मिलूँगी। जी भर कर ...

शिरीष मेहता नी बा - सविताबेन

शिरीषकुमार की उम्र चौदह साल की। पर इस उम्र में भी बिना शस्त्र लिये लड़ना - कितनी हिम्मत। सविताबेन और पुष्पेन्द्रभाई मेहता के सुपुत्र शिरीषकुमार ने यही किया। उस साहसी सुपुत्र को मेरा नमस्कार और ऐसे पुत्र को जन्म देनेवाली माँ को शत-शत प्रणाम। पुत्र के जाने के बाद माता-पिता ने जिस धैर्य का परिचय दिया उसको विनम्र अभिवादन।

---

15 अगस्त 1947 की रात उषा मोटाभाइ, मोटाभाई पुकारते हुए बाहर आयी। शिरीष गया तबसे ऐसा ही कभी-कभी चिल्लाती हुई दौड़ती है। "शिरीष नथी, शिरीष नथी" कहती हुई मैं भी उसके पीछे-पीछे

दौड़ी। वह दरवाजे में रुकी और आसमान की ओर अंगुलि-निर्देश कर उसने एक विशेष चमकने वाला तारा दिखाया ... "हाँ, निश्चित यही मेरा शिरीष स्वतंत्र भारत के तिरंगे झंडे की वन्दना कर रहा है"।

मुझे आज भी याद है। 9 अगस्त 1942 की सुबह। सुबह के पाँच बजे थे। उस दिन शिरीष कुछ विशेष उत्साहित था। उसके मित्र आये, गाँव के लोग भी आये और प्रभात फेरी शुरू हो गयी। नहि नमशे, नहि नमशे निशान भूमि भारत का ... (नहीं झुकेगा, नहीं झुकेगा निशान भारत भूमि का) सबसे आगे था मेरा शिरीष। पदयात्रा गाँव में जाने लगी थी कि अचानक - अचानक पुलिस आयी और सबको गिरफ्तार किया। उस समय दोपहर के बारह बजे होंगे। ...... पर रात के आठ बजे तक सभी को रिहा कर दिया गया।

मेरी माँ की और शिरीष की विशेष दोस्ती थी। वह जब तक नहीं आया तब तक वह बिना कुछ खाए पीये, दरवाजे पर बैठी रही। घर पर आते ही शिरीष उसके गले लगा। बा ने कहा - शिरीष तू सबसे आगे रहता है, मने तो बहु डर लागे छे। उस पर इतनी आसानी से उत्तर दिया - नानी माँ, हम गीता में पढ़ते है - नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। फिर डरना ही क्यों?

हम यहाँ नन्दुरबार आये, बिल्कुल अलग कारण से। मेरे पिताजी शांत हुए और बा अकेली रह गयी। यहाँ का कारोबार बड़ा था ऊपर से मैं अकेली बेटी। इसलिए फिर सूरत का कारोबार और घरबार सोमनाथ को सौंपकर पुष्पेन्द्र जी को मुझे और शिरीष को लेकर यहाँ आना पड़ा। शिरीष का जन्म यहीं का 29 दिसंबर 1926 का।

शिरीष दो साल का था, तब उसे लेकर हम मुंबई काँग्रेस अधिवेशन में गये थे। वहाँ बहुत भीड़ थी। चार-पाँच घंटे नेताओं के भाषण चलते रहे थे, पर शिरीष किसी योगी की तरह शांत बैठा था, न खाने को कुछ माँगा, न पीने को।

शिरीष बड़ा हुआ तो बा के पास बैठकर बड़ी-बड़ी किताबें

पढ़ने लगा उसे गुजराती और हिन्दी तो आती थी, यहाँ आने पर मराठी भी सीख गया।

एक बार अंग्रेजी की पढ़ाई करते समय इन्होंने ऐसे ही छेड़ा - शिरीष विलायती लोगों की भाषा सीख रहे हो। तो उसने कहा - बापूजी, हमें अंग्रेजों से टक्कर लेनी है, तो हमें उनकी भाषा तो आनी ही चाहिए।

दामाद काम से लेट आते तो मेरी बा बहुत गड़बड़ा जाती थी। शिरीष कभी-कभी इनके कपड़े पहन कर नानी को बहुत हँसाता और फिर दोनों बहुत देर तक हँसते ही रहते। शिरीष को तितलियाँ बहुत पसंद थीं। तितलियों के पीछे घंटों तक दौड़ता रहता था।

रसोई बनाने का शिरीष को बहुत शौक था। वैसे हमारे घर पर बहुत नौकर-चाकर थे, पर तीज-त्यौहार को हम माँ, बेटी खाना बनातीं, तो शिरीष भी हाथ बँटाता था। एकबार पूड़ियाँ निकालते समय उबलता हुआ तेल शिरीष के पाँव पर गिर गया। कोई दवा लगा रहा था, तो कोई घी लगा रहा था। मैं फूँक मार रही थी, मैंने पूछा शिरीष, बहुत दुःख रहा है क्या? तो उसने कहा - "मेरी वेदनाएँ तो मातृभूमि की वेदनाओं की अपेक्षा तो बहुत ही कम हैं। उसके जख्मों पर कौन फूँक मारकर ठंडक देगा?" फिर मेरे गले लगकर बड़े प्यार से पूछा - बा, तुम जेल जाओगी तो बापू तुम्हें छुड़ाने आ जाएँगे पर मातृभूमि को गुलामी से छुड़ाने कौन आएगा?

महात्मा जी तो शिरीष के लिए परमदैवत। आठ अगस्त को महात्माजी ने अंग्रेजों को आदेश दिया था - "चले जाओ"। हिमालय से आवाज उठी, विंध्य और सतपुड़ा में नारों की वही गर्जना, सह्याद्रि की शिखाओं से गिरिगव्हरों में वही गूँज - ठाणे पुलिस स्टेशन पर किसानों ने कब्जा कर लिया। सातारा में नाना पाटील ने प्रतिसरकार स्थापित की, साने गुरुजी की आज्ञानुसार डॉ. उत्तमराव पाटील ने अंमलनेर की जनता को उकसाया। हम खानदेश के नंदुरबार में थे। क्रान्ति में हमने अपना हिस्सा उठाया। जुलूस निकालना, वृत्तपत्र निकालना, बाँटना, जनजागृति

करना।

आठ सितंबर को आंदोलन का एक महीना पूरा हुआ इसलिए भाई मदाने, भगवानदास शाह और शिरीष ने मशाल जुलूस निकाला। उन्हें गिरफ्तार करके बाद में रिहा कर दिया। पर देशभक्त तो अन्दर से जल उठे थे। सूर्यपुत्रों की वह अग्नि-आराधना ही थी। अंग्रेज जुल्म करते और हम उन्हें शह देते।

10 सितंबर को मेरे पिताजी का श्राद्ध था। सितंबर को शिरीष हमारे साथ लड्डू बनाने बैठा था। रेशमी पीतांबर पहने हुए, माथे पर केशर का तिलक। कितना सुंदर दिख रहा था मेरा शिरीष। ...

लालदास, घनश्याम बारबार उसे बुला रहे थे - बस इतने लड्डू बनाकर आता हूँ कहकर जल्दी-जल्दी खाना खाकर निकला। थोड़ी ही देर में .. हम काम कर ही रही थीं कि बंदूक की आवाजें आने लगीं। हम घबरा गयी थीं। काम वैसे ही छोड़कर, जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आये सब लोग। उसी समय "इन्किलाब जिन्दाबाद" के नारों के बीच चार पाँच लोग किसी को कंधे पर उठाकर लाते हुए दिखे। भगवानदास पारीख जी को देखकर हम तो नीचे ही बैठ गये।

वह... वह तो मेरा शिरीष ही था। खून से लथपथ। भगवानदास जी बता रहे थे - आज जुलूस का रूप ही कुछ अलग था। हजारों लोग उसमें शामिल हुए थे। सबसे आगे झण्डा लिये अपना शिरीष था। "चले जाओ", "भारत छोड़ो", "वन्दे मातरम्" के नारे आसमान में गूँज रहे थे। अचानक सामने से पुलिस आयी। शिरीष से उन्होंने झण्डा माँगा, पर शिरीष ने नहीं दिया, पुलिस को गुस्सा आया। पुलिस ने लड़कियों पर फायर करना चालू किया, तो शिरीष ने कहा - "अरे डरपोंको, लड़कियों पर क्यों गोलियाँ दाग रहे हो? हिम्मत हो तो हमें मारो ।" पुलिस ने एकदम बन्दूकें घुमायीं और बड़ी निर्दयता से शिरीष के हाथों पर और पैरों पर, कंधे पर गोलियाँ मारी।

जमीन पर अपने ही खून में गिरते-गिरते शिरीष ने झंडा

लालदास जी के हाथ में सौंप दिया। हम यह सब सुन ही रहे थे कि पुलिसवाले आये और शिरीष का शव माँगने लगे। फिर तो इन्हें बहुत गुस्सा आया। "अरे कमीनों, उतरो नीचे। मेरे घर की सीढ़ी चढ़ने की कभी जुर्रत भी मत करना। एक तो हमारी दुनिया लूटी और ऊपर से नमक छिड़क रहे हो। उतरो नीचे।"

धीरे-धीरे मैं खून से सनी हुई लाश तक पहुँची। उसका सिर अपनी गोद में लेकर रोने लगी। और अपने बच्चे को चूमते हुए रोती ही रही। थोड़ी देर बाद ये मेरे पास आये और बोले – "अपना शिरीष गया, अब सविता अपने आँसू पोंछो। उसकी महायात्रा की तैयारी करनी है।" मैंने उनकी ओर ऐसी दयनीय नजर से देखा। उस समय मैं किसी क्रान्तिकारी की माँ नहीं थी। मैं सिर्फ अपने शिरीष की 'बा' थी। म्हारो लाडलो शिरीष... शिरीष।

खुदीराम बोसनितीनेर बोन (भगिनी) - अपरूपादेवी

नंदझोल गाँव के तहसीलदार त्रैलोक्य बसु और उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी का सुपुत्र खुदीराम बोस। खुदीराम अपनी उम्र के छठे वर्ष ही अनाथ हो गया पर उनका पालन-पोषण किया उनकी बहन अपरूपादेवी और जीजाजी अमृतलाल जी ने। भारत में अंग्रेजों पर पहला बम फेंकने की हिम्मत की थी खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चाकी ने। उनकी शूरता को शत-शत प्रणाम। (यह बम सेनापती बापट ने तैयार किया था)

रूपा-रूपा पुकारते हुए ही ये घर में आये। मैंने आश्चर्य से इनकी ओर देखा क्योंकि साल डेढ़ साल बाद पहली बार इनकी आवाज

में इतना आनन्द-उल्हास महसूस हो रहा था। बिना दूसरी साँस लिये ही आगे बोले - आज ठाकुरेर शामने प्रोदीप जलाआ। आज आमादेर राम न्याय पेए छे। (आज भगवान के सामने दीप जलाओ। आज अपने राम को न्याय मिला है।) वे आगे बोले किंग्ज़फोर्ड मर गया - गया नरक में।

मैंने सुना पर बोल नहीं पायी कुछ भी। सिसकी के कारण आवाज ही नहीं निकल पा रही थी। यही किंग्ज़फोर्ड मेरे खुदीराम की मृत्यु का कारण था। उसी के कारण मैं अपने माँ-बाप के वंशदीप को बचा नहीं पायी थी।

इन्होंने मेरे कंधों को ऐसे पकड़कर जोर-जोर से हिलाकर कहा - अरे कांदचो केनो? (अरी, रोती क्यों हो?) मालूम है कैसे मरा? राम ने जो बम फेंका था, उससे वह इतना डर गया कि सब दूर उसे मौत ही मौत दिखने लगी। फिर उसने नौकरी छोड़ दी और गया मसूरी। पर वहाँ भी डर ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अन्त में उस डर से ही मर गया वह। रूपा, अपने राम का बलिदान व्यर्थ नहीं गया।

सच में, खुदी मेरा इकलौता भाई अमर हो गया। और किंग्ज़फोर्ड अपने कुछ कर्मों का फल यहीं भुगतकर, बचे हुए पापकर्मों के फल भुगतने गया नर्क में।

मेरे बाबा नंदझोल गाँव में तहसीलदार थे। मेरी माँ एक सीधी-साधी, धार्मिक प्रवृत्ति की महिला। बाबा के बाद कुछ ही दिनों में माँ का स्वर्गवास हुआ। माँ गयी तब तो मैं पूरी तरह टूट गयी थी। माँ के मृतदेह पर सिर रखकर रो रही थी। तो इन्होंने मेरे पास आकर कहा - अपने आप को सँभालो। अपने भाई को देखो, वह तो अभी छह साल का ही है। मैंने एकदम उसे अपने सीने से लगाकर कहा - "मेरा छोटा-सा भाई अनाथ हो गया।" पर इन्होंने उसे एकदम अपने पेट से लगाते हुए कहा, "नहीं अनाथ नहीं है, आज से यह अपना बेटा है।"

उस दिन से मैं खुदी की माँ और ये उसके बाबा बन गये।

एक बार खुदी स्कूल से लौटा तो उसका पूरा हाथ खून से भरा हुआ था। मैंने घबराकर पूछा – "की होलो? तोमार की दिये लेगे गेये छे ..." (क्या हो गया? क्या लग गया?) उसने हँसते हुए कहा – "आज स्कूल में होड़ लगी थी कि टेबल पर कौन ज्यादा मुक्के मारता है। मेरे मित्र तो सात-आठ मुक्के मारकर ही रुक गये। मैंने तीस मुक्के मारे। मैंने तो टेबल को अंग्रेज समझ लिया और जड़ता गया मुक्के अंग्रेजों के मुँह पर।" सुनकर तो मैंने अपना माथा कूट लिया। जिस बात से हम उसे दूर रखना चाह रहे थे, वह बात तो उसके मन में पहले से घर करके बैठ गयी थी।

वह तो शायद जन्मतः ही देशभक्त था। एक बार उसने मुझसे कहा – माँ तू ही कहती है ना कि, अपना भारतवर्ष वर्षों से ज्ञान का भंडार रहा है, अपना देश बहुत महान है। तो अपने देश पर परजातीय इंग्रेजेर राज्यत्त केना? मैं बड़ा हो जाऊँगा तो अंग्रेजों को अपने देश से निकाल दूँगा।

मैंने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा – ना, ऐसा मत बोल। तू बहुत पढ़ लिखकर बड़ा होकर कीर्ति प्राप्त कर। माँ बाबा की अमानत है तू।

पर उसका समाधान नहीं हुआ शायद, किन्तु वह चुप हो गया। खुदी उदास रहने लगा, गुमसुम रहने लगा इसलिए उसे एक दिन मंदिर में ले गये थे पर वह अन्दर नहीं आया। सीढ़ियों पर पड़े लोगों से बातें करने लगा – तुम लोग यहाँ क्यों सोये हो? उन्होंने कहा – हम रोगी हैं। भगवान हमारे स्वप्न में आकर जब तक रोग से मुक्ति नहीं दिलाते तब तक हमें यहीं पड़े रहना पड़ेगा। उस पर उसने कहा – अरे बाप रे। तब तो मुझे भी एक दिन यहीं आ कर पड़े रहना पड़ेगा।

एक ने पूछा – एमोन केना बाबा? (ऐसा क्यों?)

खुदी ने कहा – अरे बाबा, गुलामी से बड़ा कोई रोग नहीं होता, उस रोग को एक न एक दिन तो भागना ही होगा।

हम मिदनापुर के पास एक गाँव में रहते थे। खुदी का जन्म भी मिदनापुर का – तीन दिसंबर 1889, उसकी पाठशाला भी वहीं और सारे मित्र भी वहीं के। इसलिए हमने उसे वहीं विद्यार्थी वसतिगृह में रखा था, पर उसने अंग्रेजी दूसरी के बाद स्कूल छोड़ दिया, और युगांतर नामक संस्था में बाबू ज्ञानेन्द्रनाथ के साथ शामिल हो गया। अंग्रेजों ने बंगाल का विभाजन करना तय कर दिया था, जिससे सारा बंगाल ही जल उठा था।

एक दिन एक जड़का हमारे घर पर आया। इनसे दबी-दबी आवाज में कुछ बोला और ये – आमी असछी कहते हुए जूते पहनकर और शाल ओढ़ते हुए जल्दी-जल्दी कहीं चले गये। बहुत देर बाद वापस आये तो खुदी को लेकर ही। मैंने उनसे पूछा, "आपनी कोथाय चोले गियाछिलो? (आप कहाँ चले गये थे?) आप खुदी को कैसे ले आये?" उनके बोलने से पहले ही खुदीराम ने कहा – माँ, बाबा मुझे जेल से छुड़ाकर ले आये।

मैंने अचरज से पूछा – की?

तो उसने कहा – माँ, मैं मिदनापुर प्रदर्शन में सोनार बांग्ला के पत्रक बाँट रहा था, तो एक सिपाही मुझे पकड़ने आया। मैंने उसकी नाक पर ऐसा जारे से मुक्का मारा और कहा – खबरदार यदि मुझे हाथ लगाया तो ... पहले वॉरण्ट लाओ मेरे नाम का, बाद में ही पकड़ना मुझे।

बीच में ही मैंने पूछा – पर, प्रदर्शन में गया ही क्यों पत्रक बाँटने?

उसने जवाब दिया – उस प्रदर्शन में अंग्रेजों की शूरता की बढ़ाई थी चित्ररूप में।

मैंने फिर पूछा – तो?

तो क्या? मैं भाग निकला वहाँ से, पर रात को मैं सोया था तो अंग्रेजों ने मुझे पकड़ लिया। और अभी मैं छोटा हूँ, पन्द्रह साल का ही हूँ, इस दलील पर बाबा मुझे रिहा करा कर ले आये।

पूर्व बंगाल के बोधा जिले के बंकीपुर गाँवं का हट्टा-कट्टा दिखनेवाला प्रफुल्लकुमार चाकी हमारे दुबले पतले दिखने वाले खुदी का नजदीकी मित्र था।

1904 में कोलकाता कोर्ट में मुख्य मजिस्ट्रेट पद पर किंग्ज़फोर्ड की नियुक्ति हुई थी और उसने हर छोटे छोटे गुनाह के लिए अधिक से अधिक कठोर दण्ड देना चालू कर दिया था, इसलिए बंगाल के लोग बहुत अधिक चिढ़ गये थे। उन्होंने किंग्ज़फोर्ड का निषेध किया। पर इसके विपरीत अंग्रेज सरकार ने किंग्ज़फोर्ड को और ऊपर का पद देकर बिहार के मुजफ्फरपुर में भेजा। वह भी दो अंगरक्षक दे कर।

खुदीराम और प्रफुल्ल ने किंग्ज़फोर्ड को मारने का निश्चय किया और मुजफ्फरपुर में एक धर्मशाला में जाकर रुके। वहीं से उन्होंने किंग्जफोर्ड पर नजर रखी। वह केवल कोर्ट में और शाम को घर के पास वाले यूरोप क्लब में अपनी एक निश्चित घोड़ागाड़ी से आता जाता था।

30 अप्रैल 1907 की रात। खुदी और प्रफुल्ल किंग्ज़फोर्ड के बंगले के पास पहुँचे। उनके हाथ में बम और पिस्तौल तैयार थे। बंगले से किंग्ज़फोर्ड की घोड़ागड़ी निकली और खुदी ने बम फेंका। जोर से धमाका हुआ। सब दूर हाहाकार मचा और फिर खुदी और प्रफुल्ल दोनों अलग-अलग दिशाओं में भागे।

रातभर रेल की पटरी पर दौड़ते हुए खुदी बेनीगाँव पहुँच गया। दौड़-दौड़ कर भूख लगी थी, इसलिए वह एक दुकान में मुड़ी खरीदने गया था। वहीं फत्तेसिंह और शिवप्रसाद सिंह नामक दो सिपाही खड़े-खड़े बातें कर रहे थे- श्रीमती कैनडी और उनकी बेटी बम विस्फोट में मारे गये। उसी समय असावधानी से खुदी ने झट से पूछा - क्या किंग्ज़फोर्ड बच गया? बस, खुदी सीधे ही पुलिस के हाथ में आ गया।

प्रफुल्ल समस्तीपुर पहुँचा। वहाँ मोकामा जानेवाली रेलगाड़ी में बैठा। पर पुलिस दरोगा नंदलाल बॅनर्जी ने उसे पहचान लिया। वह प्रफुल्ल को पकड़ने दौड़ा। पर प्रफुल्ल उसके हाथ से छूटकर रेलगाड़ी

से नीचे उतरा। और उससे बोला, तू बंगाली, मेरा देशबंधु, फिर भी अंग्रेजों के लिए मुझे पकड़ रहा है? इतना कहते हुए अपनी ठोड़ी पर और सीने में गोली दाग कर आत्माहुति दे दी।

हमने खुदी के लिए वकील देने के लिए बहुत प्रयत्न किया। अन्त में कालीदास बोस तैयार हो गये। कोर्ट ने खुदी से जैसे ही पूछा – बम क्यों फेका? वैसे ही तुरन्त जबाब दिया – किसी मिट्टी या पत्थर पर परीक्षण करने की अपेक्षा किसी अंग्रेज का सिर मुझे ठीक लगा। खुदी के वकील उससे कह रहे थे कि गुनाह स्वीकार ही न करे। पर खुदी ने नहीं माना। अपील, सुनवाई, ऐसा चलता रहा ... 13 जुलाई . .. अन्त में 11 अगस्त 1908 को खुदी को फाँसी दी गयी।

मेरा 19 साल का खुदी फाँसी पर चढ़ते हुए भगवद् गीता को सीने से लगाकर बोला – मुझे मृत्यु का कोई भय नहीं लग रहा है। मेरे देश की राजपूत नारियाँ जौहर करती हैं।

मैं नौ महीने बाद फिर जन्म लूँगा और तुम्हें अपने देश से भगा दूँगा।

गण्डक के किनारे चिता पर रखा खुदी का देह अब भी वैसा ही दिख रहा है। मैं और ये हतप्रभ होकर बैठे हुए थे, वकील कालीदास बोस मुखाग्नि दे रहे थे, फिर चिता शान्त हुई और खुदी की राख उठाने लोगों की भीड़ आ गयी। मुझे पुरा विश्वास है कि मेरे खुदी की इतनी इतनी-सी राख से ही घर-घर में खुदीराम खड़े हो जाएंगे – भारत माता को बन्धमुक्त करने के लिए – बन्धमुक्त करने के लिए।

शिवराम हरी राजगुरू की माँ - पार्वतीबाई

पुणे के पास चाकण नामक एक छोटे से देहात में रहने वाले शिवराम। उनके पिताजी का नाम हरिनारायण राजगुरु और माता का नाम पार्वतीबाई। शिवराम जब 6 वर्ष के थे उनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। बाद में सारी जिम्मेदारी माँ पार्वतीबाई पर आयी। माँ ने उनका पालन-पोषण बहुत लाड़-प्यार से किया, परन्तु अपने निर्णय स्वतः ले सके ऐसे संस्कार भी बालक में डाल दिये। इसीलिए सॉण्डर्स का खून करने के बाद भी बिना विचलित हुए फाँसी पर चढ़ गए।

घाटपर शिवराम का अन्तिम संस्कार करके मैं और मेरा बेटा दिनकर दुःखी मन से पुणे वापस आये। मेरे पाँवों में तो जैसे एक-एक

मन की बेड़ियाँ पड़ी होंगी, हर कदम मेरे लिए कष्टदायक हो गया था। दरवाजे में मैंने पैर अंदर रखा तो सामने की दीवार पर लगी तस्वीर में बापूसाहेब, मेरा शिवराम हँसता हुआ मेरी ओर देख रहा था। किसी ने वह फ़ोटो वहाँ लगा दी थी और उस पर ताजे फूलों की माला चढ़ा दी थी। सच में, मेरा बापूसाहेब उस चौखट में आ बैठा था। मेरे आँसुओं का परदा हटा कर मेरा मन एकदम भूतकाल में पहुँच गया।

वैसे हमारा असली नाम था ब्रह्मे, पर हमरे पूर्वज – कचेश्वर जी को शाहू महाराज ने गुरु बनाया था और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी राजगुरु पद चलता आया। शिवराम दिनकर से छोटा – 24 अगस्त 1908 को जन्मा था। जब उसके पिताजी शांत हुए तब शिवराम 6 साल का होगा। मुझे दमे की बीमारी थी इसलिए कुँए से पानी भरना, अनाज कूटना–पीसना आदि मेहनत के कामों में शिवराम मेरी मदद करता। दिनकर चाकण में नौकरी करता था। हमारी थोड़ी–सी खेती भी थी, तो हमारा गुजारा जैसे–तैसे चल जाता था। शिवराम का पढ़ाई–लिखाई में मन नहीं लगता था। व्यायाम, तैरना, मुक्की से नारियल फोड़ना आदि पराक्रम दिखाते हुए गाँव भर भटकना यही उसकी दिनचर्या थी।

एक बार भाभी के सामने दिनकर ने उसे बहुत डाँटा, – पढ़ाई नहीं करनी हो तो भीख माँगो। बस यह घर से निकल गया। हम पागलों जैसे इधर–उधर उसकी पूछताछ करते रहे। मैं घंटो तक दरवाजे में बैठी उसकी राह देखती रहती थी।

फिर कहीं बीस–बाईस दिन बाद उसका पत्र आया। यहाँ से पहले वह हमारे गाँव – खेड़ गया। फिर वहाँ से कभी भूखे पेट तो कभी कैसे धीरे–धीरे काशी पहुँचा। वहाँ सांगदेवी विद्यालय में वेदाध्यान करने लगा।

एक दिन गंगा किनारे ऋग्वेद की संहिताएँ बोल रहा था तब श्रीराम बलवंत सावरकर ने उसे देखा। साढे पाँच फीट का दुबला पतला देह निश्चित मराठी ही होगा फिर उन्होंने इससे मित्रता कर ली। उन्हीं के कारण आगे जाकर शिवराम की भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुखदेव

जैसे जी-जान से प्यारे मित्र मिले। भविष्य में क्या करोगे पूछने पर इसका एक ही उत्तर था -

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानः, स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोक : ।।

शिवराम वैसे शीघ्रकोपी। एकबार किसी ने कहा - अंग्रेजी जागतिक भाषा है, संस्कृत मृतप्राय हो गयी है तो इसने उसके गाल पर ज़ोर से तमाचा जड़ दिया।

बापू की नींद कुंभकर्णी। एक बार एक दुकान में भगत, शिवराम सोये थे। वहाँ से केवल दो फीट की दूरी पर एक नाग फन तानकर फूत्कार कर रहा था। भगत ने इसे पीछे खींचा और साँप को बाहर निकाला। पर यह चुपचाप सोया था। एकबार ऐसे ही रेलगाड़ी से उतरा और स्थानक पर भिखारियों की कतार में चादर ओढ़कर सो गया। भगत और शिववर्मा ने खूब ढूँढा, पर नहीं मिला। उसकी जब नींद खुली तो ... फिर तो भगत और शिवराम ने नाराज तो होना ही था।

बापू वैसे बहुत अधिक उतावला था। स्वामी श्रद्धानंद जी के हत्यारे को मारने के बजाय हसन निजामी की मोटर में बैठने के लिए पाँव रखनेवाले को ही गोली मार दी। वह आदमी था हसन निजामी का श्वसुर।

क्रान्तिकारी शिवराम को रघुनाथ और भगत को रणजीत कहते थे। तो कभी-कभी शिवराम को एम्-महाराष्ट्र का कहते थे।

शिवराम का निशाना बिल्कुल सही था। उसने सॉण्डर्स को तो एक ही गोली में सुला दिया था, पर मरा कि नहीं शक था इसलिए भगतसिंह ने आठ गोलियाँ मारी। फिर अंग्रेज अफसर बनकर भगत, और उसका नौकर बनकर शिवराम फरार हो गये थे। भगत, सुखदेव और बटुकेश्वर तो पुलिस को जल्द ही मिल गये थे। शिवराम काशी से अमरावती, अकोला होते हुए मुंबई आया। मुंबई से पुणे उसे गुप्तरूप से लाने का काम किया था भाल जी पेंढारकर ने।

शिवराम दिल से बड़ा भोला-भाला था। किसी पर भी एकदम

विस्वास कर लेता। काल के संपादक शिवराम महादेव परांजपे जी की महायात्रा में इसने असावधानी से लाँग लिव्ह रेव्होल्यूशन और डाउन विथ इम्पीरिएलिझम के नारे लगाये। लाहौर के नारे पूना में कैसे? अंग्रेजों के कान खड़े हो गये। उसी समय शरद केसकर ने शिवराम से मित्रता कर ली थी। वह निकला अंग्रेजों का मुखबिर। उसकी मदद से हमारे घर पर छापा मारकर अंग्रेजों ने मेरे शेर को पकड़ लिया।

उसे भी लाहौर ले गये। अपनी माँगों को लेकर कैदियों ने दुबारा उपोषण किया। उस समय शिवराम सिर्फ एक घूँट पानी ही लेता था। नाक मुँह से खून आने लगा तो पुलिस को डर लगने लगा। गत भूख हड़ताल में ज्योतिन्द्र संन्याल चल बसे थे। इसलिए जबरदस्ती नली से दूध पिलाने की कोशिश में फेफड़ों में दूध जाने से इसे न्युमोनिया हुआ।

मैं जब उससे मिलने के लिए कारागृह में गयी। दरोगा ने दरवाजा खोला तो मैं बापू कह कर चीखते हुए ही उसकी ओर दौड़ पड़ी। मेरे जिगर का टुकड़ा, हमेशा मस्करी करके सबको हँसानेवाला ... शिवराम आज बिस्तर पर अस्थिरपंजर-सा पड़ा था। नाक में नलियाँ लगी थीं। मैंनें उसे अपने सीने से लगाया। बहुत मुश्किल से उसने हाथ उठाकर जोड़े। उसके सिरपर हाथ फेरते हुए मैं अपनी सिसकियों को रोक नहीं पायी।

बापू को श्रीखंड, मटर की सब्जी, लाहौरी पेड़े बहुत पसंद थे, इसलिए वह सब लेकर ही मैं और यमूताई भाटवडेकर गयी थीं। वहाँ जेल अधिकारी ने जेल के बाहर ही हमें बता दिया कि भगत, सुखी और बापू को आज ही फाँसी की सजा सुनायी गयी है। सुनकर तो मेरे पैरों तले जमीन खिसक गयी थी, पर हिम्मत बाँधकर मन शांत रखकर अंदर गयी थी। सब माताजी आयीं, माताजी आयीं पास बैठकर डिब्बे खोलकर खाने लगे। यमूताई का रोना रुक ही नहीं रहा था। वही लाहौरी पेड़े लायी थी और आज ही सजा सुनायी गयी थी। मैंने यमूताई के कंधेपर हाथ रख कर कहा – आप को थोड़े ही मालूम था कि आज ही फैसला सुनाया जाएगा। यह तो योगा-योग है। बाहर आने पर मेरी सारी

ताकत, सारी हिम्मत ही न जाने कहाँ गायब हो गयी। उसी समय मेरी दमे की तकलीफ एकदम उभर आयी। जैसे-तैसे घर पर आयी।

आखिर वह काला दिन आ ही गया - 23 मार्च। खबर आयी कि सुबह-सुबह तीनों को फाँसी दी जाएगी। मैं जेल की ओर दौड़ती हुई पहुँची। जेल के बाहर मैं, भगत के पिताजी और सारा लाहौर शहर खड़ा था। इन्किलाब जिन्दाबाद के नारे गूँज रहे थे। एकाएक खबर आयी कि कारागृह के पिछले दरवाजे से तीनों की अर्थियाँ अंग्रेज सतलज के किनारे ले गये हैं। और वहीं जला रहे हैं। सब भीड़ सतलज की तरफ उमड़ पड़ी। मैं भी भीड़ के साथ-साथ ही दौड़ी।

कुछ लोगों ने वहाँ से तीनों अधजली अर्थियाँ इन्किलाब जिन्दाबाद की गर्जनाओं के साथ उठायीं और वे हुसैनीवाला ले आये। मैं भी भीड़ के साथ-साथ सुन्न होकर दौड़ती हुई पहुँची। उस भीड़ में मुझे किसी ने पहचान लिया और भीड़ में से रास्ता निकालते हुए जहाँ मुखाग्नि दे रहे थे वहाँ तक पहुँचा दिया। सारा आसमान शोकाकुल हो उठा था। भगत की माँ सीना पीट-पीट कर रो रही थी। मैं सुन्न होकर आँसू भरी आँखों से आसमान तक उठनेवाली आग की लपटों को एक टक देख रही थी। बापूजी के शब्द याद आये - माँ अपना एक बेटा भारतमाता को दे दो। और मैंने शिवराम को भारतमाता के आँचल में, क्रान्तिमाता के आँचल में दे दिया था।

उसी समय कोई चिता से गरम-गरम राख लाकर सबको दे रहा था। सब अपने-अपने माथे पर राख लगा रहे थे, गोया देशकार्य की शपथ ले रहे थे - पर मैं? मेरे हाथ पर राख आयी। उस राख में भगत, सुखी और शिवराम के देह एक दूसरे से पूरी तरह से मिल गये थे। और मैं पागल जैसी उस राख के कणों को अलग-अलग करने लगी थी, ढूँढ रही थी - अपने शिवराम को।

कहाँ है मेरा शिवराम? कहाँ है? कहाँ है?

मदाम भिकाजी कामा की अम्माजी .. जीजीबाई

मुंबई के प्रसिद्ध व्यापारी सोहराबजी पटेल और जीजीबाई की कन्या भिकाजी जब सिर्फ 15 साल की थी, तब उसका विवाह रुस्तुमजी कामा नामक एक अमीर व्यापारी से हुआ था। पर वह अमीरी और ऐशोआराम सबका त्याग कर भारतमाता को बन्धनमुक्त करने के लिए अथक प्रयत्न करती रही।

---

24 सितंबर 1861 का सुनहरा दिन जब मेरी गोद में एक सुंदर गुलाबी फूल खिला था। उसे देखने जो कोई आता वह यही कहता – कितनी सुन्दर है।

कहीं मेरी ही नजर न लग जाए ऐसा सोचते-सोचते वह बड़ी

होने लगी।

हमें वैसे किसी बात की कमी नहीं थी। हम मुंबई के निवासी। संपन्नता तो हमारे घर में थी ही। हमारा रहन-सहन भी आधुनिक और अंग्रेजों जैसा। हमारे घर पर बहुत बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों का आना-जाना भी बहुत था। सोहराबजी को - भिकू के पापा को इस बात पर बहुत गर्व भी था।

भिकू सात साल की हुई, तो उसे हमने अलेक्झांड्रिया गर्ल्स स्कूल में भरती किया। वहाँ के अंग्रेजी लिबास में कितनी सुंदर दिखती थी। वहाँ उसका बोलना कितना लुभावना था। उसका आतविश्वासपूर्वक बोलना हमें इतना अच्छा लगता था कि हम उसकी आवाज में कई बार खो जाते थे। धीरे-धीरे उसने कई भाषाएँ सीख लीं। पर कभी-कभी वह बहुत उदास हो जाती थी। एक दिन तो बिल्कुल रुँवा-सा मुँह लेकर आयी। हमने उससे पूछा - भिकू, क्या हो गया तुझे - तेरी तबियत तो ठीक है? उस पर उसने कहा - नहीं, अंग्रेज लोग हिन्दुस्थानी जनता पर कितने अत्याचार करते हैं। कैसे हमें निचोड़ रहे हैं। मुझसे तो देखा नहीं जाता।

वह कई-कई घंटे झोंपड़ी-झुग्गी, गरीबों की बस्ती में घूमती रहती थी। कोई बीमार हो, तो उसकी सेवा करती। उसके ऐसे व्यवहार से हमें बहुत डर लगता था, इसलिए हमने उसकी शादी रुस्तुमजी कामा से कर दी। बैरिस्टर कामा का स्वभाव इसके स्वभाव के बिल्कुल ही विपरीत था। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी अच्छी तरह सज-धज कर उनके साथ अंग्रेजों के घर और क्लबों में जाये। पर यह हमेशा अपने देशबन्धुओं की सेवा में ही लगी रहती।

जब वह 24 साल की थी तभी काँग्रेस की सदस्या बन गयी। उसी दरमियान मुंबई में प्लेग की बीमारी फैली थी। बहुत लोग मर रहे थे। कई घर उजड़ गये, हम भी घबरा गये थे। कोई किसी के घर नहीं जाता था। पर भिकू बीमारों की दिन-रात सेवा करती रहती। रात-बेरात

भी वह मदद के लिए चली जाती।

इतने अमीर की बेटी और इतने अमीर घर की बहू होने के बावजूद गरीबों की सेवा में बड़ी तत्परता से लगी रहती। जैसे कोई माँ अपने बच्चों का ध्यान रखे उसी भाव से भिकू सबकी मदद करती रहती। पर एक बार तो वह खुद ही प्लेग की चपेट में आ गयी थी। बैरिस्टर साहब ने पानी जैसा पैसा खर्च किया और यमराज के दरवाजे से भिकू को वापस ले आने में सफल हो गये। यह बहुत कमजोर हो गयी थी। अपने देशबन्धुओं की फिकर अंदर से सता रही थी।

एक दिन रुस्तुमजी भिकू को लेकर हमारे घर पर आये। बोले – इसे कुछ दिन आप अपने घर पर रखिए। कुछ दिन बाद ट्रीटमेण्ट के लिए लंदन भेजना है। मैं साथ में नहीं जाऊँगा। हमें उनकी बात जँच गयी। हमारे यहाँ कुछ दिन रुककर जहाज से लंदन चली गयी।

उसका पिण्ड ही कुछ अलग था। इस प्रवास के दरमियान उसे कई क्रान्तिकारी मिले – फिर क्या? लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदारसिंह राणा के साथ संघर्ष पार्टी की सदस्या बनी। इसी दरमियान दादाभाई नैरोजी से मुलाकात हुई और उन्हीं की सचिव का काम भी किया।

लंदन में तो वहाँ की आबोहवा से ही उसकी तबियत ठीक हो गयी। हमने और रुस्तुमजी ने भी उसे बहुत पत्र लिखकर बुलाया पर वह टालमटोल करती रही। फिर तो रुस्तुमजी की सहनशक्ति भी कम पड़ने लगी। एक दिन वे गुस्से-गुस्से में हमारे यहाँ आये। हमारे सामने एक अंग्रेजी वृत्तपत्र डालकर बोले, – "क्या मतलब होता है इसका?" उन्होंने हमें वह पढ़कर सुनाया। उसमें लिखा था – यदि हम सब निडर होकर आवाज उठाएँ तो हम सबको जेल में डालने के लिए ब्रिटिश सरकार को कितनी जेलें बनानी पड़ेंगी? उसके आगे लिखा था – ब्रिटिश लोगों पर विश्वास मत कीजिए। जुल्म का प्रतिकार कीजिए।

बाप रे ! अंग्रेजों के राज में इतना उग्र लेखन। पर सोहराबजी

शांत रहे। उन्होंने पूछा यह सब भिकू ने ही लिखा है, ऐसा हम कैसे कह सकते हैं? रुस्तुम जी चिढ़ गये, बोले – उसी के वाक्य हैं। ऐसा ही वह बोला करती थी। आज से मेरा उसका रिश्ता खत्म। इतना कहकर गुस्से में पाँव पटकते हुए वे चले गये।

शायद इस बात का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ। क्योंकि इसके बाद लंदन से अमेरिका चली गयी। वहाँ जाकर और भी भड़काने वाले भाषण देने लगी।

अंग्रेज अधिकारी हमारे घर आकर पूछताछ करते पर हमें कुछ भी मालूम नहीं, यह कहकर हम टाल देते।

जलियाँवाला हत्याकाण्ड और लाला लाजपतराय की मृत्यु तो सबके दिलों को झकझोर देनेवाली घटनाओं से तो वह बहुत ही विचलित हो गयी थी। उस पर और उग्र शब्दों में भाषण देना चालू कर दिया और जहरीले शब्दों से प्रहार चालू किये। तो पुलिस उसके पीछे लग गयी। अब उसे अमेरिका छोड़कर पेरिस जाना पड़ा।

एक दिन सोहराब जी ने मेरे सामने एक अखबार रखा और बोले – आज जितने भी अखबार मिलेंगे सब ले आऊँगा। मैंने अचरज से उनकी ओर देखा और एक नजर अखबार पर डाली, मेरी नजर उसी पर गड़ी रही।

भिकू का फोटो अखबार में ऊपर ही चमक रहा था। मेरी भिकू ने कितनी हिम्मत की थी। 19 अगस्त 1907 भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। जर्मनी के स्टुटगार्ट शहर में अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में ऊपर के हरे पट्टे पर आठ राज्यों के आठ कमल, बीचवाले केशरी पट्टे पर वन्दे मातरम् लिखा था, नीचेवाले लाल पट्टे पर सूरज और चाँद ऐसा स्वतंत्र भारत का पहला ध्वज मेरी भिकू ने फहराया था। उसने और विनायक सावरकर ने तैयार किया था वह झण्डा। अखबार में लिखा था – उसने वह झण्डा स्टैण्ड पर रखा और अपना भाषण शुरू किया। यह हिन्दुस्थान के स्वातंत्र्य का ध्वज है। इसका

अभी-अभी ही जन्म हुआ है। हिन्दुस्थान के शहीदों के खून से वह पवित्र हो गया है। मेरा नियम है कि मैं अपने देश का झण्डा फहराकर ही बोलना प्रारंभ करती हूँ। अंत में उसने कहा - सभ्य गृहस्थों, उठिए, मैं आपसे विनती करती हूँ कि इस ध्वज को प्रणाम करें।

और आश्चर्य, पूरा सभा मण्डप सागर की लहरों जैसा खड़ा हो गया, सबने हैट हाथ में लेकर ध्वज की वन्दना की। भिकू को अपने सीने से लगाने की भावना से मैंने अखबार अपने सीने से लगा लिया।

फिर सोहराबजी से रहा नहीं गया। उन्होंने मुझे पूरी गाथा सुनायी। प्रक्षोभक भाषण देने के कारण वह इंग्लैण्ड में गिरफ्तार हो जाती, इसलिए वह पेरिस चली गयी। वहाँ उसने वन्दे मातरम् नामक वृत्त पत्र चालू किया। वह क्रान्तिकारियों को देश सेवा की शपथ दिलाती थी।

सरदारसिंह राणा उसके गुरु। 10 मई 1907 को विनायक सावरकर ने स्वातंत्र्य क्रान्ति का दिन मनाया, तब बड़ी जोखिम उठाकर वह यहाँ आयी थी। उसने सरदार सिंह राणा का सन्देश पहुँचा दिया। वह बोली - हिन्दुस्थान के जवानों, आज आप भूत और भविष्य के बीच की रेखा पर खड़े हैं। स्वातंत्र्य की रणभूमि पर खून सींचकर ही स्वातंत्र्य प्राप्त करना पड़ता है, स्वातंत्र्य कोई दान में नहीं देता या सप्रेम भेंट नहीं करता।

सरदारसिंह राणा ने अनन्ता कान्हेरे, वांछी नागर को पिस्तौल दिये थे पर सरदारसिंह पर लगे इल्जामों को इसने अपने ऊपर ले लिया।

8 जुलाई 1909 को विनायक सावरकर मार्सेलिस में जहाज से कूदकर फ्रान्स पहुँचे थे। पर अथक प्रयत्नों के बावजूद भी भिकू उन्हें रिहा नहीं करा पायी थी। पर जब मदनलाल धींग्रा को जेंक्सन के खून के बाद फाँसी की सजा दी गयी, तब भिकू पूरी तरह ढह गयी थी। वह बार बार कहती - इन दुष्टों ने मेरे लाड़ले बच्चे की जान ले ली। बाद में इसने मदन्स तलवार नामक अखबार निमाला।

अब तो मेरी उम्र हो गयी। मुझे मालूम है, जब तक उसका

क्रान्ति का कार्य पूरा नहीं होता तब तक वह वापस नहीं आएगी, और मुझसे नहीं मिल सकेगी। पर मैं बहुत आनन्द से मरूँगी। सात जन्म लेने पर भी ऐसी बेटी को जन्म देने के लिए विशेष भाग्य लगेगा।

हाँ, जाते-जाते अपने हिन्दुस्थानियों से कहना चाहती हूँ - हे भूमिपुत्रों, मन में स्वातंत्र्य का यज्ञकुण्ड प्रज्ज्वलित करनेवाली, जवानों के मन में देशप्रेम के अंगारों पर जमी राख को फूँक मार कर देशभक्ति के अंगारों को और प्रज्ज्वलित करने वाली अग्निशिखा - भारतकन्या मेरी बेटी, मेरी भिकू आपके साथ है।

भाई भगवतीचरण बोहरा की माँ - शीलवती

बहुत धनी परिवार में शीलवती और गोविंदचरण को पुत्र प्राप्त हुआ, मिन्नत माँगने पर देवी भगवती के आशीर्वाद से। भगवतीचरण जी के कार्य में धर्मेच ... अर्थेच का मतलब पूरी तरह समझकर पूरा-पूरा साथ निभाने वाली अर्धांगिनी दुर्गा घर में होने पर भी माँ शीलवती को किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा।

दुर्गा का सफेद माथा सामने देखकर मुझे तो रोना आता था। उसने भगवती की मृत्यु को कितनी शान्ति से स्वीकार कर लिया था। मेरे मन में बार-बार विचार आता था, इस छोटे से सचिन्द्र का क्या होगा?

भगवती का दसवाँ हुआ और दूसरे ही दिन भगवती के फोटो

को नमस्कार करते हुए दुर्गा वोली – बा, आप तो सचिन्द्र को सँभाल लीजिए। मुझे तो इनका क्रान्ति का कार्य पूरा करने जाना ही होगा।

मैंने उसकी ओर देखा। उसके चेहरे पर वही निश्चय का भाव था, जो भगवती के चेहरे पर हमेशा होता था। मैंने आशीर्वाद के लिए हाथ ऊपर उठाया और उसने सचिन्द्र को मेरी गोद में रखा, मेरे पाँव छुए, और एकदम बाहर निकल गयी। ....

मेरा मन एकदम भूतकाल में चला गया। हमारा परिवार आर्थिक दृष्टि से बहुत संपन्न था। किसी बात की कोई कमी नहीं थी। कमी थी तो सिर्फ मेरी शादी हुए काफी साल हो गये थे, पर मेरी कोई सन्तान नहीं थी। पास-पड़ोसियों का व्यवहार मुझे बहुत उदास कर देता। ऐसे ही किसी ने सुझाया कि हम दोनों वैष्णव देवी के दर्शन कर आएं। और आश्चर्य, देवी भगवती के आशीर्वाद से दूसरे ही वर्ष हमारे घर एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ। माँ भगवती के आशीर्वाद से जन्मा, इसलिए बालक का नाम भगवतीचरण रखा।

भगवती जब सात साल का हुआ तो उसे यहीं आगरा में ही स्कूल में भरती कराया। स्कूल आते-जाते क्या उसके ठाठ थे। आगे-पीछे नौकर। आगरा में मुसलमान बहुत थे, जो सारे के सारे भारत को अपनी जान समझते थे। इसी कारण अंग्रेजों के विरोध में सभाएँ, जुलूस, आंदोलन बहुत होते थे।

एक बार भगवती स्कूल से काफी देर से आया।

मैंने नौकरों से पूछा – देर क्यों हो गयी?

पर भगवती ने झट से जवाब दिया – रास्ते में एक सभा हो रही थी, वहाँ रुके थे।

मैंने कहा – ऐसी सभाओं में खड़े नहीं रहना।

क्यों? ... कुछ तो भी बताकर मैंने विषय टाल दिया। उसका समाधान तो हुआ ही नहीं था। उसके मन में जो तूफान उठा था, वह

शान्त नहीं हुआ था। रात को उसके बाबूजी आये, तो उसने फिर वही बात छेड़ी। उन्होंने उसे समझाया - अंग्रेज लोग अपने हिन्दुस्थान में कैसे आये और कैसे राज कर रहे हैं और कैसे अत्याचार कर रहे हैं? यह विस्तारपूर्वक सुनने के बाद उसने पूछा - बाबूजी आप क्यों नहीं गये आंदोलन करने? - तब इन्होंने समझाने की कोशिश की - बेटे, अपना कारोबार बड़ा है। हम आंदोलन में जाएँगे, तो अंग्रेज लोग हमें परेशान करेंगे।

भगवती को बात जँची नहीं, पर वह आगे कुछ बोला भी नहीं। कई बार नींद में अंग्रेज-अंग्रेज़ चिल्लाता और हड़बड़ाकर उठ बैठता।

बड़ा हुआ तो पढ़ाई में और खेल में भी अगुआ रहने लगा। हमने सोचा वह पुराना सब कुछ भूल गया होगा। पर स्कूल के एक अध्यापक के कारण वह मन ही मन देशभक्ति के पाठ दुहराने लगा था।

मैट्रिक में आगरा शहर में उसे पहला स्थान मिला था, इसलिए हमने उसे कॉलेज में दाखला दिलाया। दो कमरे किराए पर लिये, साथ में दो नौकर भी दिये।

भगवती लाहौर गया तो मुझे अकेलापन अखरने लगा। फिर मैंने इनके पीछे पड़कर दुर्गा को बुला लिया। भगवती 15 वर्ष का और दुर्गा 11 वर्ष की - तो शादी हो गयी थी। पर दुर्गा पढ़ रही थी, इसलिए वह गुजरात में ही थी। आखिर दुर्गा को हम आगे पढ़ायेंगे, इस शर्त पर उसके पिता ने उसे आगरा भेजा। वह पढ़ाई-लिखाई में बहुत अच्छी थी, इसलिए अपने वचन के अनुसार दुर्गा की पढ़ाई चालू रखी।

भगवती शुरु से ही पढ़ाई-लिखाई में बहुत आगे रहा। कॉलेज में उसने स्वयं लिखी हुई कविताओं का वाचन किया और वहीं उसकी भगतसिंह से मुलाकात हुई। उसने भगतसिंह के साथ "नौजवान भारत" नामक संस्था में प्रवेश किया। वहीं से उसका देशकार्य का प्रवास शुरू हुआ। भगवती एकबार अपने साथ भगतसिंह और शिव वर्मा को आगरा अपने घर पर रहने के लिए ले आया था। भगत के विचार सुनकर मैं

तो डर गयी। वैसा मैंने उससे कहा भी।

उसपर बहुत जोर से हँसकर उसने कहा - माँ जी आपको मालूम ही नहीं है कि भगवती हमारे हिंदुस्थानी समाजवादी प्रजातंत्र का उच्चकोटि का चिंतनशील प्रचारक है। आगे उसने कहा - माँ जी, एक न एक दिन आपको भगवती दूरदर्शी, कुशल संघटक, प्रखर वक्ता होने के साथ-साथ उसमें ध्येयनिष्ठा, साहस और निस्वार्थता के दर्शन होंगे, तब आपकी आँखें चौंधिया जाएँगी। हमारी पार्टी का घोषणापत्र शचिन्द्र नाथ संन्याल ने तैयार किया, पर भगवती ने पूरा घोषणापत्र पंजाबी में अनुवादित करके वितरण की व्यवस्था भी की। भगवती याने सब क्रान्तिकारियों के बीच का पुल है।

ऐसे ही गर्मी तेज थी, और सायमन कमीशन के आने की तारीख नजदीक आ रही थी। लाहौर में हिन्दू, मुसलमान, सिख सभी ने लाला लाजपतराय के नेतृत्व में सायमन कमीशन का विरोध करने के लिए जुलूस निकाला। उसमें भगतसिंह, भगवती, सुखदेव, चन्द्रशेखर सभी थे। क्रान्तिकारियों को किसी बाढ़ की शकल में आते देखकर एस पी ने हुक्म दिया - चलाओ लाठी, मरने दो सालों को। कहते हुए लाठी चार्च शुरु कर दिया।

मार सहते हुए "वन्दे मातरम्", "गो बैक सायमन", "अंग्रेजी सरकार नहीं चाहिये" के नारे लगाते हुए जुलूस आगे बढ़ रहा था। लोग नीचे गिरते गये। खून का कीचड़ बनता गया। लालाजी के लिए सब तरफ से लोगों ने घेरा डाल दिया, पर पुलिसवाले मारते ही जा रहे थे। जब लालाजी ने लौटने के लिए इशारा किया तब भगवती ने और सुखदेव ने लोगों से हाथ जोड़कर वापस जाने को कहा। तब लालाजी जिन्दाबाद, वन्दे मातरम् के नारे लगाते हुए लोग पीछे हटे।

लाला जी डी एस पी नील के सामने आये और गुस्से से बोले - निरपराध प्रजा पर हमला करनेवाली सरकार के लिए नालायक यही शब्द है। ऐसी सरकार को धिक्कार है। - डी एस पी नील को गुस्सा

आया, उसने लालाजी के सीने पर और सिरपर डण्डे से प्रहार किये। लालाजी ने नीचे गिरते-गिरते कहा - आज मुझपर जितनी लाठियाँ बरसीं हैं वे सारी भविष्य में ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कीलें साबित होंगी। दो दिन बाद लालाजी का स्वर्गवास हुआ। सॉण्डर्स को मारकर भगत, सुखदेव और चन्द्रशेखर ने लालाजी की मौत का बदला लिया।

भगत, सुखदेव और साथीदारों के साथ भगवती का भी वॉरण्ट निकला था। पर भगवती तो गरीब किसान के वेष में घूम रहा था।

वह एक बार घर पर आया था, तो मैंने कहा - बहू इतनी पढ़ी-लिखी है। उसे भी नौकरी के लिए लाहौर भेज दो। मेरा भाई उसे कॉलेज में नौकरी दिला देगा।

भगवती को बहुत आश्चर्य हुआ - तुम्हारा तो विरोध था, बा।

मैंने कहा - इतनी पढ़ी-लिखी है, तो जाने दो।

वह जब लाहौर में थी, तब उस पर एक कठिन काम आया। उसे भगतसिंह की पत्नी बन कर, अंग्रेज महिला के वेष में कलकत्ता भाग निकलना पड़ा। वहीं भगवती से उसकी अन्तिम मुलाकात हुई।

उसके बाद बाबाराव के पास बम बनाने का काम सीखकर भगवती आगरा आया था। बाद में भगतसिंह को रिहा करने का काम था। तो वह लाहौर गया।

28 मई 1930 वह काला दिन आ गया।

बम की पिनें ढीली हैं। सुखदेव, राज और यशपाल उसे बता रहे थे कि बम का परीक्षण न करें। पर भगवती ने बात मानी नहीं। उसने कहा - जिस दिन पहला कदम इस मार्ग पर रखा उसी दिन मृत्यु के डर को भी भगा दिया। बायाँ पैर आगे लेकर दाहिना हाथ आकाश की ओर अर्धचन्द्राकार घुमाकर बम फेंका। भयंकर विस्फोट हुआ। भगवती के एक हाथ की उँगलियाँ और दूसरा हाथ कोहनी से उड़ गया। क्षणभर तो किसी को भी कुछ समझ नहीं आया। बाद में यश आगे आया। भगवती

को सीने से लगाया और रोने लगा।

भगवती ने कहा – नहीं छुड़ा सका मैं अपने भगत को। मैं तो जा रहा हूँ पर मेरी मौत की खबर पुलिस को मत लगने देना, इसका ध्यान रखना। दुर्गा से कहना मेरा काम आगे चालू रखे।

फिर किसी को खबर न लगे इसलिए भगवती की देह एक शाल में लपेटकर पत्थर बाँधकर रावी के सुपुर्द कर दी। जैसे कर्तारसिंह, विष्णू पिंगले को रावी ने अपने में समा लिया वैसे ही मेरे लाड़ले बेटे को भी समा लिया। मेरा पेट जन्मा भगवती अब रावी की गोद में सो गया। हमेशा–हमेशा के लिए सो गया।

अल्लूरी सीताराम राजुनी थल्ली (माता) सूर्यनारायणअम्मा

दक्षिण भारत के रेम्पा विद्रोह का नेता - अल्लूरी सीताराम राजू जब छोटे थे तभी उनके पिता श्री वेंकटराम राजू का स्वर्गवास हो गया था। माँ सूर्यनारायणअम्मा आदिवासी महिला थी, फिर भी उसने सीताराम को अन्याय के विरुद्ध लड़ने की शक्ति और शिक्षा दी। स्वातंत्र्य की जन्मघुट्टी पीते-पीते ही वे बड़े हुए। पर ऐसे बेटे की मृत्यु की कड़वी खबर भी माँ सूर्यनारायणअम्मा को निगलनी पड़ी। और वह अपनी मृत्यु तक रोज अपने शहीद बेटे के गुणगान की अमृतवाणी सुन सकी। आज भी आन्ध्र के लोग सीताराम राजू को भगवान मानते हैं।

हमारी कोंडाडोरा जमात का एक लड़का दौड़ता हुआ आया और उसने मुझसे कहा – अम्मा, पुलिस सीताराम दादा को पकड़कर ले गयी। मैं झाड़ी-झुरमुट में से छिपते-छिपते ही पर दौड़ती हुई वहाँ तक गयी, जहाँ पुलिस ने श्रीराम को पकड़ रखा था। पर वहाँ जो देखा तो मेरी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। गामू मेरे पास बैठा था और मेरी देखभाल कर रहा था इसके आगे मुझे कुछ भी नहीं मालूम।

जब आँखे खोली तो मैं गामू गण्टम के घर पर थी। गामू मेरे सिरहाने बैठा था। उसने मेरे पैर पर हाथ रखते हुए कहा – ब्रिटिशवालों ने मेरे सीताराम दादा को मारा है, उसे मैं जिन्दा नहीं छोड़ूँगा ... या तो वह रहेगा, या तो मैं ... इतना कह कर वह मेरे सामने ही बाहर निकल गया।

श्रीराम का जन्म विशाखापट्टणम् जिले के पण्डरंगी गाँव का है। हम वहीं रहते थे। चार जुलाई 1897 का जन्म। वह जब छोटा था, तभी उसके थाण्ड्री (पिता) वेंकटराम राजू गुजर गये। अब सारी जिम्मेदारी मुझपर आ गयी। हम जंगल से लकड़ी तोड़ते, तो कभी काश्तकारी या मजदूरी करते। आजू-बाजू के लोग श्रीराम को सीताराम राजू कहते थे। वैसे तो हम मूल रहनेवाले मलबार के – हम तो वनवासी लोग, पहाड़ों और बीहड़ में रहने वाले। श्रीराम के पिताजी की मृत्यु के बाद हम टुनी आ गये। बहुत सालों बाद हम हिमालय की तीर्थ यात्रा करने निकले।

रास्ते में राजू की क्रान्तिकारी पृथ्वीसिंह आजाद से मुलाकात हुई चटगाँव के क्रान्तिकारियों के बारे में भी उसे वहीं जानकारी मिली।

हम तीर्थयात्रा के नाम से तो निकले, पर मुंबई, वड़ोदरा, बनारस, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, आसाम, बंगाल, नेपाल सब दूर घूम आये। वापस कृष्णदेवी पेटा आये तो श्रीराम ने संन्यस्त जीवन बिताने का निश्चय किया। गोदावरी के जंगलों में रहनेवाले आदिवासी उसे पवित्र साधु कहते थे। परंतु ...

वहाँ से श्रीराम जब वापस आया तो हमारे आंध्र में भी आंदोलन

चालू हो गया था। हमारी जाति पर अंग्रेज जो अत्याचार कर रहे थे, वे जो हमारा शोषण कर रहे थे, वह तो शान्ति के मार्ग से खत्म हो नहीं सकता। यह राजू निश्चित रूप से जान गया था, इसलिए शस्त्र तो उठाना ही पड़ेगा, यह भी उसे मालूम हो गया था। तीर्थ यात्रा के समय हमारे संरक्षण हेतु उसने घुड़सवारी, निशानेबाजी, तीरंदाजी सीखी थी। उसे योगविद्या और ज्योतिष का भी ज्ञान था।

एक दिन रेम्पा विद्रोह का नेतृत्व उसने स्वीकार किया। बाद में धीरे-धीरे विद्रोह तेज होता गया। गामू गण्टम डोरा और गामू मल्लू डोरा उसके दाहिने हाथ।

चित्तपल्ली पुलिस स्टेशन पर राजू ने हमला किया। पुलिस के साथ मुठभेड़ हुई और पुलिस वाले भाग गये। एक थानेदार की पीठ पर बंदूक लगा कर राजू ने कहा, - निकालो सब बंदूकें, मैं लेने आया हूँ। उसने चुपचाप सब बंदूकें निकालकर दे दीं। श्रीराम ने सारी बंदूकें सबको बाँट दीं। उसके बाद आदिवासियों पर होने वाले अन्यायकारक कागजात इसने जला डाले।

बाद में कृष्णा देवी पेट्टा में भी चित्तपल्ली की ही पुनरावृत्ति हुई। अब तो अंग्रेज बहुत ही डर गये थे। बाहर से हजारों पुलिस वाले बुलाए। पर यह कहाँ चुप बैठनेवाला था। बारह दिन रुका और ओमूमँगी पुलिस चौकी पर हमला किया। वहाँ से अपने मित्र वीरप्पा डोरा को छुड़ाया। वीरप्पा लागरांची क्रान्ति का नेता था। वह भी इससे मिल गया।

श्रीराम और उसके सैनिक दिन में किसानों के वेष में रहते थे। देहातों में मजदूरी करते थे। गुप्त रूप से उनकी बैठकें होती थीं और रात को पुलिस चौकी पर हमले करते थे।

एक दिन हम जंगल में लकड़ी काट रहे थे, कि चार-पाँच पुलिस हवलदार और फौज़दार आये। मैं तो घबरा गयी। हम सब एक दूसरे की तरफ देखने लगे। श्रीराम ने आँखों से इशारा किया और हम सब काम करने लगे। पुलिस वाले हर एक से पूछने लगे - राजू इव्हारु?

राजू कैसा दिखता है? उसके साथीदार, स्वातंत्र्य क्रान्तिकारी कैसे हैं? मेरे पास आकर मुझसे भी पूछा और मैंने नकारार्थी सिर हिला दिया। फिर वे श्रीराम के पास जाकर खड़े हो गये। मेरा तो दिल धड़कने लगा। पर श्रीराम ने ऐसा नाटक किया कि वह बोल ही नहीं सकता। वह तो छूट गया। रात को हम सब चांदनी में बैठे थे, तो सब ने उसकी बहुत तारीफ की।

पुलिसवाले उसे ढूँढने गाँव में आते, तो उनके सामने एक बाण आ गिरता। उसमें एक चिट्ठी लगी रहती थी। उसपर लिखा रहता था – हमने अंग्रेजी राज को मिटाने की प्रतिज्ञा की है। मिरपकायट्या – मिरचीवाले अंग्रेज यह सब देखकर ही डर जाते थे।

राजू न कभी प्राणहानि खुद करता, न करने देता। हथियार छीन लेता था। एकबार गण्टम और मल्लू के हाथों हण्टर और कॉट मारे गये थे तो राजू को यह बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी। उसने इन दोनों को बहुत डाँटा।

इन दो अंग्रेज अधिकारियों की हत्या अंग्रेज सरकार के लिए तो एक चुनौती थी। उन्होंने राजू को पकड़ने के लिए हमारे दुर्गम इलाके में टेलीग्राफ के तार डाले, रास्ते बनाने की कोशिश की पर हमारे लोग रातों –रात उखाड़कर फेंक देते। बाकी आदिवासी भी हमारी बहुत मदद करते थे।

15 अक्टूबर 1922 अड्डगीतला तहसील के तहसीलदार को राजू ने संदेश भेजा था – आज रात हम हमला करेंगे। तहसीलदार डर गया। उसने सेना को बुला लिया। राजू ने बाणों से सैनिकों को जख्मी करके लड़ाई जीत ली।

अड्डगीतला से लौटते समय अंग्रेजों का खुफिया – रुदय्या राजू के लोगों के हाथ लगा था पर राजू ने उसे छोड़ दिया और कहा – दुबारा इधर मत आना, पर अपने कलेक्टर से जाकर बोल दे कि लड़ाई की इतनी ही गर्मी चढ़ी हो तो आ जा मुझसे मिलने।

29 अक्टूबर को रेपचोडवरम् पर हमला किया और विजय हासिल की।

6 दिसम्बर को हजारों की सेना राजू को पकड़ने आयी। पर राजू और उसकी सेना पहाड़ों और जंगलों में छिप गये। पर वहाँ गोरे सैनिकों की और क्रान्तिकारियों की आमने सामने लड़ाई हुई। कई क्रान्तिकारी मारे गये। नदी नाले इनके खून से लाल हो गये।

अंग्रेज सेनापती जॉन को विजय का नशा चढ़ गया। उसने क्रान्तिकारियों के शवों की प्रदर्शनी लगायी और लोगों से कहा – राजू की मदद करोगे तो तुम्हारा भी यही हाल होगा। पर जो सिर पर कफन बाँधकर ही लड़ने आये थे, वे तो पीछे हटने से रहे। राजू ने अन्नवरम् पुलिस थाने पर छापा मारा। पृथ्वीसिंह आजाद और राज महेन्द्री इन मित्रों को छुड़ा लिया।

दूसरे दिन जिला कचहरी के सामने मिरचीवालों के नाम पत्र आया – आज शाम हम सब क्रान्तिकारी शेखावरम् में इकट्ठा हो रहे हैं। हिम्मत हो तो आ जाओ शेखावरम् में।

एक दिन तो मल्लू के घर पर पुलिस ने घेरा डाल दिया था। अंग्रेज अधिकारी किरन्स के साथ लड़ते समय मल्लू अंग्रेजों के हाथ लगा। अंग्रेजों ने उसे बहुत दुःख दिये। पर उसने मुँह नहीं खोला।

फिर तो अंग्रेजों को और भी नशा चढ़ गया। उन्होंने हमारे लोगों को मारना पीटना शुरू कर दिया। हमारी झोपड़ियों को तोड़ना और ध्वस्त करना चालू किया। सामुदायिक दण्ड दिया। पर लोग झुके नहीं। एक बार मुझे भी पकड़कर ले गये। पर कुछ फायदा नहीं हुआ।

परन्तु 6 मई को निर्णायक युद्ध हुआ। असम रायफल्स के नेता उपेन्द्र पटनायक और अंग्रेजों के बीच घमासान लड़ाई हुई। दूसरे दिन 7 मई को राजू पकड़ा गया।

पर मोती नामक अधिकारी को पैसे का मोह हुआ – राजू को

मारने वाले को दस हजार का इनाम रखा था। तो उसने राजू को पकड़कर पेड़ से बाँध रखा और निर्दयता से गोलियाँ चलायीं।

मेरे राजू को ... एक शूर वीर को निःशस्त्र हालत में मारा। 2-3 दिन तक राजू का शव पेड़ से बँधा था। हम लोग गण्टम का इन्तजार कर रहे थे। पर वह भी तो मारा गया था।

जहाँ दीप ही बुझ गया, वहाँ तो अन्धकार ही फैलेगा। दीपक को तो एक न एक दिन बुझना ही है। मेरे राजू के मरने का मुझे उतना दुःख नहीं हो रहा है, जितना किसी शूर वीर को जिस बुझदिली से मारा, उसका है। मेरे शेर को मारा, वह भी छल-कपट से? अरे अंग्रेजों, तुम्हारी नियत पर मुझे घृणा आती है। एक नीच के हाथों मेरे शेर की मृत्यु हुई उसका दुःख है। किस माँ का दूध पिया था रे अंग्रेजों ! तुमने?

राम प्रसाद बिस्मिल की माँ - मायावती

बिस्मिल का अर्थ है घायल, जो अंग्रेजों के अत्याचारों से घायल हो गया था, उसका असली नाम था - राम प्रसाद। उसके पिता का नाम था पंडित मुरलीधर प्रसाद और माँ का नाम मायावती। मूलतः कवि मन लेकर जन्मे यह मोती हिन्दुस्थानी समाजवादी प्रजातंत्र संघटना की माला में गूँथा जाने पर देशभक्ति के काव्य के रंग और भी खिलने लगे। उनकी लेखनी की प्रखरता में शहीदी रक्तिमा चमकने लगी।

राजबंदियों के वेष में मेरा राम बहुत कमजोर दिख रहा था। उसकी आँखों के पास कालापन आ गया था। दाढ़ी बढ़ी हुई थी,

रूखे-सूखे बाल बिखरे हुए थे। उसने मुझे देखा और उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। मैं भी अंदर ही अंदर रोने लगी थी। आज अठारह दिसंबर, कल उन्नीस को राम को फाँसी होने वाली है। आज और इस क्षण तो मेरा मन विचलित नहीं होना चाहिये था। मैंने अपने दिल पर पत्थर रखते हुए कठोर आवाज में कहा - राम, तू मौत से इतना डरता होगा, ऐसा मुझे कभी लगा ही नहीं था। अरे, जिनके राज्य पर कभी सूरज नहीं ढलता, उन राज्यकर्ताओं से भी मेरा राम नहीं डरता, ऐसा समझकर तुझ जैसे पुत्र को जन्म देने पर मुझे गर्व था। पर आज तेरी आँखों से झरने वाली आषाढ़गंगा देखकर मुझे बहुत क्रोध आ रहा है। तू इतना डरपोक था, तो आया ही क्यों था यहाँ तक?

उसने मेरे शब्द सुने और आँसू पोंछते हुए कहा - नहीं माँ, मैं मौत से नहीं डर रहा हूँ। मुझे तो रोना इस बात के लिए आ रहा है, कि जिस माँ ने मुझे शहीद बनने के लिए जन्मा उसको मैंने दुःख के सिवा कुछ नहीं दिया। फाँसी पर तो मैं हँसता हुआ ही जाऊँगा। फिर उसने धीमी आवाज में बताया - मैंने राजेन्द्रनाथ के हार्मोनियम में अपनी आत्मकथा छिपाकर रखी है, गणेश विद्यार्थी को देने के लिए। उसमें मैंने लिखा है - मुझे इस तरह गढ़ने का सारा श्रेय मेरी माँ को ही जाता है। स्वतंत्र भारत के इतिहास में उसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

मैंने उसके हाथ पर रुद्राक्ष रखा और शिववर्मा के साथ बाहर आयी। शिववर्मा मेरा भतीजा बनकर मेरे साथ अंदर आया था।

राम के पिताजी मेरे पहले ही राम से मिलकर आये थे और बाहर पेड़ के नीचे खड़े मेरा इन्तजार कर रहे थे। उन्होंने पूछा - रोयी तो नहीं वहाँ, राम के पास?

मेरे उत्तर देने से पहले ही शिववर्मा ने कहा - नहीं, माताजी ने तो अपनी आँखों में आँसू भी नहीं आने दिये। आगे उसने कहा - अंग्रेज लोग कहते हैं, क्या मालूम ये हिन्दुस्थानी किस मिट्टी के बने हैं, फाँसी पर चढ़ते हुए न ये रोते हैं, न इनके माँ-बाप रोते हैं। हमारे देश में ऐसे

लोग होते, तो हम उनकी तारीफ करते अघाते नहीं। .. अंग्रेजों ने हमारी तारीफ के पुल बाँधने से पहले तो आप जैसी धैर्यवान माताओं के चरणों की धूल अपने माथे पर लगा लेनी चाहिये।

हम गोरखपुर की धर्मशाला में रुके थे। रात को मेरी साँस ऊपर नीचे होने लगी। दूसरे दिन राम को फाँसी जो होने वाली थी। अपने राम के अनेक रूप मनःपटल पर आने लगे।

हम आर्यसमाजी हैं। राम के पिताजी पंडित जी, प्राथमिक शाला में शिक्षक थे। हमारा चरितार्थ जैसे-तैसे चल जाता था। राम का जन्म हुआ 1896 में। बचपन से ही वह बहुत चंचल था। उसकी चंचलता को लगाम लगाने के लिए उसके पिताजी ने उसे स्कूल में भरती कर दिया। जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया वैसे-वैसे उसका वाचन बढ़ने लगा। पठन-पाठन के विषय बदलने लगे।

एक बार घर आने में बहुत देर हुई, तो हम दोनों बहुत परेशान हो गये थे। मैं तो रोने ही लगी थी। अंधेरा बढ़ रहा था, ऊपर से और सर्दी। जैसे ही उसे सामने से आते देखा, मेरी चिंता क्रोध में परिवर्तित हो गयी। कहाँ गया था तू? मैं जोर से बोली। मेरी ओर आश्चर्य से देखते हुए उसने जवाब दिया - गांधी जी की सभा में - उत्तर सुनते ही उसके पिताजी ने उसे पास लेते हुए समझाते हुए कहा - बेटे, ऐसा मत करो। मेरी नौकरी छूट जाएगी, तुझे भी आगे जाकर अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी।

उस पर उसने झट् से कहा - मैं नहीं करूँगा सरकारी नौकरी।

तो मैंने गुस्से से कहा - तो फिर क्या करोगे? अपना पेट काटकर तुझे पढ़ा रहे हैं कि तू हमें दो रोटी खिलाएगा।

राम को हमारी दलीलें जँची नहीं। लखनऊ कॉलेज में पढ़ने के लिए गया। पर वहाँ बहुत जल्दी मातृवेदी संस्था में शामिल हो गया। और साल के अंदर-अंदर ही घर आया और बोला - मैं कॉलेज छोड़कर आया हूँ। अपने आप को देशकार्य के लिए समर्पित कर दिया है। मैं तो रोने लगी क्योंकि यह सुनकर मुझे झटका लगा। उसने आगे कहा -

बैठकर मुझसे कहा - तुम जैसी माताएँ अपने पुत्रों को भारत माँ की सेवा में दे दें तो भारत माता को गुलामी में रहना ही नहीं पड़ेगा।

राम की बात तो सही थी। मैंने भी मन ही मन एक बात तय कर ली कि राम की यथाशक्ति मदद करूँगी। आगे जाकर उसे मैंने ही माउझर पिस्तौल खरीदने के लिए सवा सौ रुपये दिये थे। एक बार मुझसे दो सौ रुपये ले गया था। और अपनी पुस्तक अमेरिका को स्वातंत्र्य कैसे मिला - प्रसिद्ध कर एम्ब्युलन्स स्टाफ के वेष में दिल्ली जाकर अपनी पुस्तक की प्रतियाँ बेचकर छह सौ रुपये कमाये। उसमें से मुझे चार सौ देकर बचे हुए दो सौ अपने क्रान्तिकार्य के लिए दे दिये।

शस्त्रों के लिए उसने - निहलिस्ट रहस्य, बोलशेविक की करतूत, मन की लहर, कैथराइन, स्वदेशी रंग आदि पुस्तकें लिखकर बेचने का उपक्रम चालू किया। फिर भी पैसे कम पड़ने लगे तो उनकी संस्था ने डाके डालना चालू कर दिया। पर फिर भी धन कर्ज के रूप में लिया जाता था और बंगाल ब्रांच या इंडिपेण्डेंट किंगडम या युनायटेड इण्डिया के नाम से रसीदें दी जाती थीं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पर इसकी बहुत ही भक्ति थी। एक बार तिलक जी लखनऊ काँग्रेस के अधिवेशन के लिए आये थे। कार्यकर्ताओं ने उन्हें कार में बिठाया पर राम और उसके साथी कार के सामने लेट गये। विवश होकर तिलक जी को कार से उतरकर बग्घी में बैठना पड़ा। राम ने बग्घी के घोडों को छोड़ दिया और राम ने और उसके साथियों ने बग्घी खींची।

हम धार्मिक थे पर सनातनी नहीं थे। अशफाक और राम की दोस्ती इसकी मिसाल थी। कई बार राम और अशफाक दोनों एक ही थाली में खाना खाते थे। एक बार मेरी बेटी शास्त्रीदेवी के पाँव पर नकली प्लास्टर बाँधकर उसमें हथियार छिपाकर बारी-बारी से बहन को गोद में उठाकर रेल से शाहजहाँपुर ले गये थे।

काकोरी काण्ड की कल्पना आजाद जी के सामने सबसे पहले

राम ने ही रखी। वह काम करने से पहले सबकी तरह घर आया था मिलने के लिए। मैंने पूछा – "कितने दिन रहोगे?" तो उसने कहा, "तीन दिन"। मैंने कहा – "चलो भागते भूत की लंगोटी ही सही।" मतलब ठीक से समझ नहीं सका, तो पूछा – "माँ मैं भूत हूँ?" मैंने कहा – "नहीं बेटे, तू भूत नहीं है, अंग्रेज सरकार भूत है, राक्षस है।" इन्होंने कहा – "धीमे बोलो, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा?" मैंने कहा, "सुनने दो, हम सब जागेंगे तो ही अपना देश स्वतंत्र होगा।"

राम प्रसाद "बिस्मिल", बिस्मिल याने घायल, इसी नाम से वह अपनी कविताएँ लिखा करता था। उसने अपनी लिखी कविता मुझे सुनायी थी –

देश सेवा ही का बहता है लहू नस-नस में
अब तो खा बैठे हैं, चित्तौड़ के गढ़ की कसमें ।
सरफरोशी की अदा होती है यूँ ही इसमें
भाई खंजर से गले मिलते हैं आपस में ।

फिर 9 अगस्त 1925 को काकोरी काण्ड हुआ। सरकारी खजाना लूटा। यह घटना तो अंग्रेज सरकार के लिए एक दहशत बनकर रह गयी। उन्होंने धर-पकड़ चालू कर दी। बनवारीलाल फितूर हुआ। शचीन्द्रनाथ बक्षी, मुकुंदीलाल गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त, मुरारीलाल, केशव चक्रवर्ती, पकड़े गये। एक छोटे से कमरे में रामप्रसाद, राजेन्द्र नाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह रात को सोये थे, पुलिस ने छापा मारकर तीनों को पकड़ लिया। अशफाक और चन्द्रशेखर आजाद तो बाहर थे।

एक दिन एक साधु हमारे दरवाजे पर आया और बोला, "श्रीराम जी आपका भला करे" मैंने आवाज़ पहचान ली। मैंने कहा – "अशफाक बेटे, तुम यहाँ क्यों आये हो? बेटे, पुलिस यहाँ भी घूमती रहती है।" उस पर उसने एक कागज मुझे दिया और कहा, माताजी इस पर गोविंदवल्लभ पंत, बी के चौधरी, मोहनलाल सक्सेना और चन्द्रभान गुप्त के पते हैं। उनसे विनती कीजिए कि वे हमारी वकालत करें। मैंने उसे कुछ खाने

को दिया और कहा - तुम फिक्र मत करो, मैं यह काम कर दूँगी। उस समय वह अपनी माँ - रोशन बी से मिले बिना ही वापस चला गया था।

वकीलों के प्रयत्नों को यश नहीं आया। रोशन, राजेन्द्र और राम तीनों को फाँसी की सजा सुनायी गयी। अशफाक से मेरी वह आखरी मुलाकात थी। बाद में वह भी पकड़ा गया और उसे भी फाँसी। राम ने उसे पत्र लिखा था - प्यारे भाई, तुम्हारा और मेरा सपना एक ही है। हिन्दु मुस्लिम की एकता। भाई सुनो -

"मरते बिस्मिल, रोशन, लाहिरी, अशफाक अत्याचार से
होंगे पैदा सैंकड़ों इनके रुधिर की धार से ।"

आजाद जी को जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें था -

"मिट गया जब मिटनेवाला, फिर सलाम आया तो क्या?
दिल की बरबादी के बाद, उनका पयाम आया तो क्या?"

उन्नीस दिसंबर को फाँसी के तख्त की ओर जाते समय राम ने पूर्व दिशा की ओर नमस्कार किया, तो अंग्रेज अधिकारी जोन्स ने आश्चर्य से पूछा। - सूरज तो पश्चिम में डूब रहा है और पूरब की ओर देखकर नमस्कार क्यों कर रहे हो? उसपर इसने कहा - आज तो डूब रहा है पर कल सुबह तो इधर ही उगेगा। आज मैं फाँसी पर जा रहा हूँ पर स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए मैं कल फिर जन्म तो लूँगा ही।

फिर फाँसी के तख्त की ओर जाते हुए कहा -

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही रहे ।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे ।
जब तक कि तन में जान जिगर में लहू रहे।
तेरा ही जिक्र या तेरी जुस्तजू रहे।

राम का निष्प्राण देह हमारे हाथ रात को सौंपा गया। अंग्रेजों के धिक्कार के नारे, और भारतमाता की जय के नारे आसमान में गूँज रहे थे, पर मेरा राम शांति से सोया था। कल की मेरी हिम्मत का बाँध आज

पूरी तरह से टूट गया था। आज सिसकियों से परे कुछ भी नहीं था। मेरा राम गया और मेरी दुनिया में राम ही नहीं रहा। पर बार-बार ऐसा ही लग रहा था कि अब वह उठेगा .... अब .... मैंने उसे गले लगाते हुए कहा – राम अपनी वह कविता बोल –

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है ।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है ।

15

सुखदेव की बेबे - रल्लीदेई (गंगादेवी)

लुधियाना जिले के नौधरा गाँव के रामलाल थापर और रल्लीदेई का बेटा सुखदेव। इसके जन्म से पहले ही इसके पिता की मृत्यु हो गई थी इसलिए चाचाजी अचिंतराम थापर के घर पर ही परवरिश हुई। अचिंतराम स्वयं भी देशभक्त ही थे। उनका प्रभाव बालक पर न होता तो आश्चर्य ही होता। सुखदेव की माँ को गाँववाले गंगादेवी ही कहते थे। वह भी जिन्दगी भर सब की सेवा ही करती रही। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव यह तिकड़ी युग युगान्तर भारतीयों के मन में बनी रहेगी।

वह दिन तो मुझे मरते दम तक याद रहेगा। उस दिन बेताबी से सुखी का इन्तजार कर रही थी। मैं जान गयी थी कि मेरी मौत हर घड़ी नजदीक-नजदीक आ रही थी। उसी समय सुखी की मीठी आवाज आयी, "पैड़ी पौणा चाची जी, की हाल है?" उस पर मायादेवी फौरन बोली - मैं तो ठीक हां, पहले तू दीदी नूं देख, जो तेरी राह देख रही है।

वह सीधे मेरे पास आया। मेरी हालत देखकर उसकी आँखें भर आयीं। मुझसे बोला नहीं जा रहा था, फिर भी मैंने कहा - सुखा, तेरे चाचाजी के घर की हालत देखी है तूने। .. मैं तो कुछ क्षण और जिन्दा रहूँगी। तुझे खुश देखना चाह रही थी, पर ... पर ...

मेरी उस रोती हालत में भी सुखा एकदम तनके बैठ गया और बोला - बेबे मैं चाचाजी की हालत जाणदां वां, एस करके ही मैंनें ब्याह नहीं करना है। मैंने तो देश की सेवा करनी है।

मेरी तो आखरी साँसे चल रही थीं। पर आखिर में मैंने कहा, बेटे, सावधानी से काम करना। तेरे काम में तुझे कामयाबी मिले। .... और फिर ....

बहुत दूर से सुखा की आवाज आती रही - बेबे ... बेबे

मेरी चिता जल रही थी। सुखा बैठे-बैठे रो रहा था। जलती हुई चिता पर से मैं बोलना चाह रही थी - मेरी देह तो जल जाएगी पर मेरी आत्मा हमेशा तेरे साथ रहेगी बोलते-बोलते मेरी जब नींद खुली। जब पूरी तरह जाग गयी, तो तय किया कि मैं सुखा का ही साथ देती रहूँगी और सिर्फ उसी का भला सोचूँगी।

सुखा की जिन्दगी बड़ी दुःखी थी। जन्म से तीन महीने पहले ही उसके पिता स्वर्ग सिधार गये। उसका जन्म हुआ 15 मई 1907 को लुधियाना जिले के नौधरा गाँव में। उसके जन्म के बाद उसके पालन-पोषण के बारे में सोचना शुरू करने से पहले ही, उसके चाचा अचिंतराम जी और चाची मायादेवी के रूप में भगवान ही आकर हमें अपने घर ले

गये।

पर देवरजी का एक पाँव जेल में तो दूसरा घर में। हर आंदोलन में वे आगे रहते थे। एक बार तो सिर पर बहुत बड़ा घाव लेकर घर आये थे। मैंने सोचा सुखा डर जाएगा, पर नहीं डरा।

घर पर चाचा जी के मित्रों की सभाएँ होती थीं तो सुखा उनके साथ बैठा रहता था। मैंने एक बार कहा – बेटे, बड़ों के बीच बच्चों ने नहीं बैठना चाहिए। उस पर उसने कहा – वे लोग अंग्रेजों को अपने देश से भगाने वाले हैं। मैं तो उन्हीं के साथ बैठूँगा।

एकबार घर पर कोई बैठक होने वाली थी हिंदु, मुसलमान, सिख सभी को सुखा ने देखा और चाचाजी ने कहा – यहाँ कोई जात-पात कुछ नहीं होती। असि सारे ही हिंदुस्थानी हैंगे।

एकबार सुखा ने मुझसे कहा – मैं भी चाचा जी जैसी ही देश की सेवा करूँगा। सुनकर तो मैं रोने लगी। मैंने कहा – अपनी बेबे को शरम आए ऐसा कभी भी और कुछ भी काम मत करना। तू ही मेरा सहारा है। तेरे बिना कौन है मेरा इस दुनिया में?

शायद इसीलिए आखरी समय मुझसे मिलने आया था, तो छिपने-छिपते कभी साधु का वेष तो कभी किसान का वेष, तो कभी भिखारी का वेष बदल-बदल कर घर तक पहुँचा था।

सुखा छोटा था। मेरे पास ही सोया था। एका-एक जोर-जोर से ठाँ-ठाँ बोलते हुए उठकर बैठ गया। वह नींद में बड़-बड़ा रहा था। मैंने उसे जगाते हुए पूछा – की होया। तो उसने कहा – अंग्रेजों को बंदूक से मार रहा था। जैसे-तैसे करके उसे सुला दिया।

एकबार सुख की फटी कमीज में से लाल नीले निशान दिखे। कमीज उतरवाकर उससे पूछा – किसने मारा? हेडमास्टर जी ने। क्यों क्या शरारत की?

मेरा देश निबंध लिखना था। मैंने लिखा – हमारी मातृभूमि बहुत

समृद्ध है पर आज अंग्रेज सरकार की जुल्म जबरदस्ती के कारण वह रो रही है। उसके आँसू पोंछना हम सबका कर्तव्य है। यह वाक्य पढ़कर अध्यापक ने मेरी नोटबुक हेडमास्टर जी के सामने रखी। उन्होंने मुझे मारा और बोले – स्कूल बन्द करवाना है क्या? मेरी ओर देखते देखते वह चाचा जी के सामने खड़ा हो कर पूछने लगा – चाचा जी मैंने क्या गलत लिखा?

नहीं बेटे, तेरी बात तो बिल्कुल सही है।

आगे जाकर भगत से भेंट हुई। दोनों के विचार बिल्कुल एक समान थे। फिर तो भगत सुखा की जान बन गया। उठते-बैठते, खाते-पीते हर वक्त भगंत...भगत....भगत।

सुखा शुरू से ही निश्चयी था। जो दिमाग को बात जँच जाये, वह वही करेगा। आखरी समय मुझसे मिलने आया था तब भगत ने और शिवराम ने सॉण्डर्स की हत्या कर दी थी। यह बात इसके सिवा और किसी को भी मालूम नहीं थी। मेरी मौत तो सामने दीख रही थी तो उसकी चाची ने कहा – बेटे दीदी का पूरा क्रियाकर्म करके जाना।

तो कहा – फिर से अब मेरा आना नहीं हो सकेगा। मुझे अपनी राह पर चलना है।

उसके चाचा जी ने कहा – दान दक्षिणा कौन देगा?

चाचा जी बेबे जिन्दा थी तो वह भी दूसरों के लिए। उसकी आत्मा किसी चीज में नहीं अटकेगी।

उसके बाद अपने मित्रों से मिला तो उनसे कहा – अब कहीं भी रुकावट नहीं है। फाँसी पर भी चढूँगा, तो मेरे लिए रोनेवाला कोई नहीं है। अच्छा हुआ, नहीं तो बेबे रोती। इतना कहते-कहते बहुत रोया।

सुखा जब स्कूल में था तो अपने हाथपर ओम और अपना नाम गुदा लिया था। पर भूमिगत होने पर निशानदेही खतरनाक हो सकती है इसलिए नायट्रिक एसिड अपनी कलाई पर डाल दिया था। बहुत बड़ा

घाव हो गया था। हाथ पर सूजन भी आ गयी थी, बुखार भी आ गया था। पर ऐसी हालत में भी मन शांत रख कर अपनी सहिष्णुता की परीक्षा लेने हेतु उसने कोई दवा नहीं ली थी। बाद में हल्के-हल्के निशान रह गये थे इसलिए दुर्गाभाभी के यहाँ मोमबत्ती से पूरा चमड़ा जला दिया था।

अपनी ताकत आजमाने के लिए एक हट्टे-कट्टे आदमी की नाक पर जोर से मुक्का मारा और बाद में चुपचाप उसकी मार भी खा ली थी।

वैसे तो सीधे-साधे कपड़े पहनता था, शौक था सिर्फ अलाव में भुट्टे सेक कर वहीं बैठ कर खाने का।

सेंट्रल एसेम्बली में बम डालने भगत ने ही जाना चाहिए, ऐसी सुख की एक निश्चित राय थी। भगत के स्थान पर दूसरा ही कोई बम डालने जाएगा ऐसी बात भर इसने सुनी, तो इसने भगत को ही फटकारा और भगत को ही बम डालने के लिए विवश किया। पर जब भगत गिरफ्तार हुआ, तो सुखा पूरी तरह ढह गया। बिल्कुल टूट गया था। भगत पर उसका इतना प्रेम, इतनी भक्ति की लाहौर की जेल में भगत से मिलकर दिल्ली आये हुए एक डी एस पी को ही सुखा ने अपने गले लगा लिया। मैं माँ थी पर इतना प्रेम तो सुखा ने मुझ पर भी नहीं किया होगा।

आखिर एक दिन गुलाम रसूल नामक लुहार के कारण सुखा भी पकड़ा गया। और साथ में जयगोपाल और किशोरीलाल पकड़े गये।

सुखा जब कारागृह में था तो क्रान्तिकारियों ने अन्नसत्याग्रह किया था। तब सुखा को डॉक्टर जबरदस्ती दूध पिलाते पर सुखा गले में उँगली डालकर उगल देता। एक बार तो तबियत इतनी बिगड़ गयी की डॉक्टर घबरा गये। यदि यह कारागृह में दम तोड़ दे तो सारे राजबन्दी बौखला जाएँगे, इसलिए उसे जबरदस्ती पानी पिलाने की कोशिश की गयी। पन्द्रह दिन तक उसने पानी नहीं पिया, उस हालत में भी वह दौड़ा और बेहोश होकर गिर पड़ा तब डॉक्टरों ने उसे पानी पिलाया। मैंने

उसकी अंतःप्रेरणा को कैसे जागृत किया होगा। पर वह उठा। होश में आया, तो भगत और शिव वर्मा उससे बहुत नाराज हो गये थें पर बोला कुछ भी नहीं। पर अंग्रेज घबरा गये उन्होंने क्रान्तिकारियों की माँग मंजूर कर ली और दूसरे ही दिन अन्न सत्याग्रह समाप्त हुआ।

फिर 23 मार्च 1932 – भगत, सुखा और शिव वर्मा फाँसी के तख्त की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने फाँसी के फंदे को अपने होठों से चूमा, अपने ही हाथों से अपने गले में डाल लिया तो अंग्रेज अधिकारी भी अवाक् रह गये।

मैं पहले ही चली गयी थी, मुक्त होकर तीनों बच्चों का स्वर्ग के द्वार पर स्वागत करने के लिए, तीनों को स्वर्ग के दरवाजे पर ही मिलने के लिए अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिए जिन्होंने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की, उन में मेरा लाड़ला 23 साल का बेटा – मेरा सुखा भी आ रहा है।

भगवान के सामने आँचल फैला कर एक ही भीख माँगती हूँ – मुझे हिन्दुस्थान में कहीं भी, किसी भी हालात में जन्म दे पर हर जन्म में सुखा जैसे बेटों की ही माँ बना दे।

मित्रों, आपने अपना ध्वज देखा है? उसके मध्य में अशोक चक्र है। उसमें 24 आरे हैं, वे 24 घंटों को दर्शाते हैं। वे आरे भी एक दूसरे से जुड़े हुए असंख्य बिन्दुओं से बने हैं। प्रत्येक बिंदु एक-एक क्रान्तिकारी का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह असंख्य क्रान्तिकारी और उनकी माताओं को हम प्रणाम करते हैं।

मित्रों मंदिर कितना भी सुंदर हो, उसकी नींव के पत्थर को हम भूल नहीं सकते। पंढरपूर के विठोबा को नमस्कार करने से पहले नामदेव की सीढ़ी को सब नमस्कार करते हैं। उसी तरह क्रान्तिकारी तो महान हैं ही, पर उनकी जन्मदात्री माताएँ भी कितनी महान हैं।

उन महान माताओं में से कुछ माताओं का स्पंदन आप तक पहुँचाने का हमने प्रयास किया है। जिन वीरमाताओं के जीव-प्राणों से अपनी भारतमाता स्वतंत्र हुई, उन माताओं को अपनी मातृभूमि का कण-कण कह रहा है ...

वन्दे मातरम् ।
वन्दे मातरम् ।

हमारे नवीन प्रकाशन

पुस्तक नाम	लेखक	मूल्य (रु०)
◆ परिवार प्रबोधन	संकलित	12
◆ हिन्दू प्रतिभा के दर्शन	रवि कुमार	200
◆ श्री गुरुजी और सामाजिक समरसता	डा. एम.राम जोयिस	150
◆ जीवन मूल्य (तीन भाग)	प्र. ग. सहस्रबुद्धे	(प्रत्येक भाग) 70
◆ सुमंगलम	डॉ. बजरंग लाल गुप्त	50
◆ भारत परिचय प्रश्न-मंच	डा. हरिश्चन्द्र बर्थ्वाल	30
◆ पुण्यभूमि भारत	जुगल किशोर शर्मा	35
◆ Jammu & Kashmir - A State in Turbulence	Narender Sehgal	(Paper Back) 200 (Hard Bound) 300
◆ The Role of Youth in Nation Building	Mohan Rao Bhagwat (IT/Management youth (Meet)	20
◆ गोरक्षा-राष्ट्ररक्षा गोसेवा-जनसेवा	गौरीशंकर भारद्वाज	40
◆ हाँ! हम हिन्दू हैं	लक्ष्मण टोपले	40
◆ मीठे बोल कथा अनमोल	वचनेश त्रिपाठी	30
◆ संगठित हिन्दू-समर्थ भारत	मोहनराव भागवत (पत्रकार वार्ता)	15
◆ हिन्दू मानसिकता	दत्तोपंत ठेंगडी	20
◆ राष्ट्र निर्माण में युवाओं का योगदान	मोहनराव भागवत (आई.टी/मैनेजमेन्ट प्रोफेशनल गोष्ठी)	17
◆ राष्ट्रीय सुरक्षा	मोहनराव भागवत (चिकित्सक गोष्ठी)	17